मई 2020

स्रोत

विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

मूल्य: ₹ 30.00

लॉकडाउन

02 व्योम मित्र:
एक मानव-रोबोट

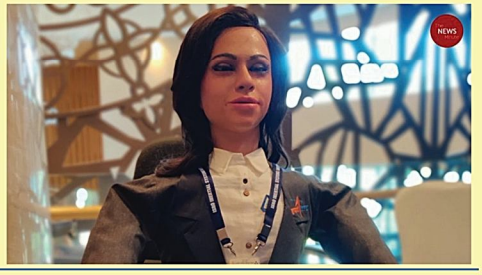

20 कोरोना वायरस के
स्रोत पर गहराता रहस्य

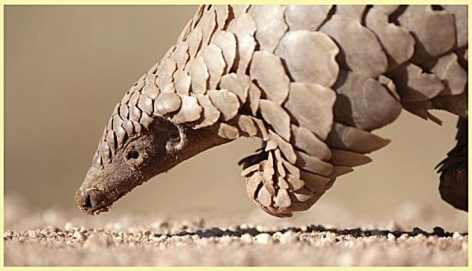

26 कृत्रिम बुद्धि
से एंटीबायोटिक की खोज

35 मधुमक्खियां साथियों का
अंतिम संस्कार करती हैं

वर्ग पहेली 188

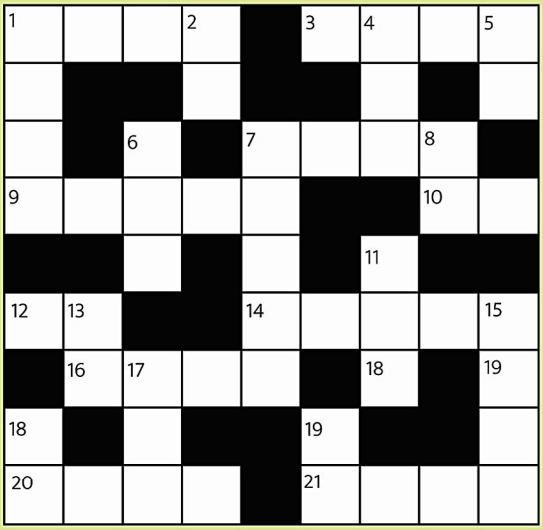

संकेत

दाएं से बाएं

1. वर्तमान माहौल में मलेरिया की मशहूर दवा (4)
3. एक ही मूल से उपजे भिन्न-भिन अंग (4)
7. पर तवा गड़बड़ होकर नाव खेने लगा (4)
9. लकड़ी काटने वाला (5)
10. गज़क में एक नाप (2)
12. रेगिस्तान, था रजवाड़े में (2)
14. स्वाद न सार, लेकिन चखना या आनंद लेना (5)
16. बिखरना या फैलना (4)
20. किरणों के रूप में ऊर्जा (4)
21. आकाश में रहने वाले (4)

ऊपर से नीचे

1. पत्तियों का हरा रंग (4)
2. पानी बहने का साधन या मिथकीय इंजीनियर (2)
4. अंडमान की एक जनजाति (3)
5. मायथॉलॉजी में प्लूटो (2)
6. किसी वस्तु की अपनी स्थिति न छोड़ने की प्रवृत्ति (3)
7. किसी झिल्ली में से पदार्थों का चुनिंदा आवागमन (5)
8. बराबर गरजने में नस (2)
11. मिस्र का एक विवादास्पद बांध (3)
13. सूरज (2)
15. तपकीर - सूंघने की तंबाकू (4)
17. सुबह (3)
18. छांछ वितरण में तस्वीर (2)
19. हुनर या सांप का फैला हुआ सिर (2)

स्रोत

विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

मई 2020

वर्ष-14 अंक-05 (पूर्णांक 376)

संपादन एवं संचालन

एकलव्य

जमनालाल बजाज परिसर,

जाटखेड़ी, भोपाल - 462026

फोन : (0755) 2977770, 2977771, 72, 73

ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

www.srotefeatures.in, www.eklavya.in

संपादक

सुशील जोशी

सहायक संपादक

प्रतिका गुप्ता

ज़ुबैर सिद्दिकी

आवरण डिज़ाइन

रोहित कोकिल

उत्पादन सहयोग

इंदु नायर, कमलेश यादव

राकेश खत्री

वितरण

झनक राम साहू

सदस्यता शुल्क

300 रुपए

एक प्रति 30 रुपए

चंदे की रकम कृपया एकलव्य, भोपाल के नाम बने ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें।

व्योम मित्रः एक मानव-रोबोट	डॉ आनंद कुमार शर्मा	2
तोतों में मनुष्यों के समान अंदाज़ लगाने की क्षमता		4
सत्रहवीं शताब्दी की पहेली भंवरे की मदद से सुलझी		5
कोविड-19 के खिलाफ लड़ाई की प्रगति	डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन	6
कोविड-19 मरीज़ की देखभाल		8
कोरोना वायरस किसी सतह पर कितनी देर रहता है?		9
कोरोनावायरस पर जीत की तैयारी	डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन	10
कोरोना के खिलाफ लड़ाई में टेक्नॉलॉजी बना हथियार	प्रदीप	11
कोरोना संक्रमितों की सेवा में अब रोबोट	जाहिद खान	13
चेहरा छुए बिना रहना इतना कठिन क्यों है?		14
कोरोना वायरस के खिलाफ दवाइयों के जारी परीक्षण		16
गर्भ में कोरोनावायरस से संक्रमण की आशंका		18
कोरोना वायरस किसी प्रयोगशाला से नहीं निकला है		19
कोरोना वायरस के स्रोत पर गहराता रहस्य		20
चिड़िया घर में बाघिन कोरोना संक्रमित		21
लंबे जीवन का रहस्य		22
बुढ़ापे की जड़ में एक एंज़ाइम	एस. अनंतनारायणन	23
क्या तनाव से बाल सफेद हो जाते हैं?		25
कृत्रिम बुद्धि से एंटीबायोटिक की खोज	प्रदीप	26
अस्पतालों में कला और स्वास्थ्य	डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन	27
कोशिकाओं की इच्छा मृत्यु - एपोप्टोसिस	डॉ. विपुल कीर्ति शर्मा	29
मिर्गी के दौरे में जूता सुंघाना कहां तक सही?	कालू राम शर्मा	31
जीभ के बैक्टीरिया - अपना पास-पड़ोस खुद चुनते हैं		33
पृथ्वी के नीचे मिला नया सूक्ष्मजीव संसार		33
हवा में से बिजली पैदा करते बैक्टीरिया		34
मधुमक्खियां साथियों का अंतिम संस्कार करती हैं		35
हिमालय क्षेत्र के हाईवे निर्माण में सावधानी ज़रूरी	भारत डोगरा	36
एम्बर में सुरक्षित मिला डायनासौर का सिर/प्राचीन एम्बर सुरक्षित मिला तिलचट्टा		37

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। यह मासिक संस्करण स्वयंसेवी संस्थाओं, सरकारी संस्थाओं व पुस्तकालयों, विज्ञान लेखन से संबद्ध तथा विज्ञान व समाज के रिश्तों में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के विशेष अनुरोध पर स्रोत के साप्ताहिक अंकों को संकलित करके तैयार किया जाता है। यहां प्रकाशित सामग्री का उपयोग गैर व्यावसायिक कार्यों के लिए करने हेतु किसी अनुमति की आवश्यकता नहीं है। स्रोत का उल्लेख अवश्य करें।

व्योम मित्रः एक मानव-रोबोट

डॉ आनंद कुमार शर्मा

भारत का पहला मानव-सहित अंतरिक्ष मिशन गगनयान 2021-22 के दौरान उड़ान भरेगा। अंतरिक्ष में मनुष्य को भेजने से पहले भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) सभी प्रासंगिक प्रौद्योगिकियों में महारत हासिल करने के लिए दो मानव-रहित मिशन भेजेगा।

इसरो ने 22-24 जनवरी, 2020 को बैंगलुरु में एक तीन दिवसीय संगोष्ठी के दौरान एक महिला रोबोट अंतरिक्ष यात्री 'व्योम मित्र' का अनावरण किया। 'मानव अंतरिक्ष उड़ान और अन्वेषण - वर्तमान चुनौतियां और भविष्य के रुझान' नामक इस संगोष्ठी के उद्घाटन दिवस पर व्योम मित्र आकर्षण का केंद्र था।

इसरो के मानव-सहित अंतरिक्ष उड़ान कार्यक्रम के तहत गगनयान पहला यान होगा, जिसे शक्तिशाली जीएसएलवी एमके III रॉकेट द्वारा प्रक्षेपित किया जाएगा।

गगनयान कक्षीय कैप्सूल में एक सेवा मॉड्यूल और एक चालक दल मॉड्यूल है। वर्तमान गगनयान योजना के अंतर्गत दो मानव-रहित और एक मानव-सहित उड़ान शामिल हैं। पहली मानव-रहित उड़ान दिसंबर 2020 में और दूसरी जुलाई 2021 में प्रस्तावित है। दो सफल मानव-रहित उड़ानों के बाद, पहला मानव-सहित मिशन दिसंबर 2021 में निर्धारित किया गया है।

समानव अंतरिक्ष यान को या तो चालक दल द्वारा या दूर से भू-स्टेशनों द्वारा संचालित किया जा सकता है, और यह स्वायत्त भी हो सकता है। समानव अंतरिक्ष यान 5-7 दिनों के लिए पृथ्वी की निम्न कक्षा में परिक्रमा करेगा और फिर उसका चालक दल मॉड्यूल सुरक्षित रूप से धरती पर वापस लौटेगा।

गगनयान मिशन का मुख्य उद्देश्य प्रौद्योगिकी प्रदर्शन है। मिशन का दूसरा उद्देश्य देश में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के स्तर में वृद्धि करना है। गगनयान एक अंतरिक्ष स्टेशन स्थापित करने का अग्रदूत होगा।

मानव-रोबोट व्योम मित्र मूल रूप से एक मानव की सूरत वाला रोबोट है। उसके पास सिर्फ सिर, दो हाथ और धड़ है, निचले अंग नहीं हैं।

किसी भी रोबोट की तरह, एक मानव-रोबोट के कार्य उससे जुड़े कंप्यूटर सिस्टम द्वारा संचालित किए जाते हैं। कृत्रिम बुद्धि (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) और रोबोटिक्स के विकास के साथ मानव-रोबोटों को ऐसे कार्यों के लिए तेज़ी से इस्तेमाल किया जा रहा है जिनमें बार-बार एक-सी क्रियाएं करनी होती हैं, जैसे कि रेस्तरां में बैरा।

इसरो की योजना 2022 तक किसी इंसान को अंतरिक्ष में भेजने की है। वह एक क्रू मॉड्यूल और रॉकेट सिस्टम विकसित करने में जुटा है जो अंतरिक्ष यात्री की सुरक्षित यात्रा और वापसी सुनिश्चित कर सके। भारतीय अंतरिक्ष यात्रियों को व्योमनॉट्स के नाम से संबोधित किया जाएगा। जिन अन्य देशों ने अंतरिक्ष में मनुष्यों को सफलतापूर्वक भेजा है, उन्होंने अपने रॉकेट और नाविक पुनःप्राप्ति तंत्र (क्रू रिकवरी सिस्टम) के परीक्षणों के लिए जानवरों का इस्तेमाल किया था, जबकि इसरो अंतरिक्ष में मानव को ले जाने और वापसी के लिए अपने जीएसएलवी एमके III रॉकेट की प्रभावकारिता का परीक्षण रोबोट का उपयोग करके सुनिश्चित करेगा। यह रोबोट विक्रम साराभाई

अंतरिक्ष केंद्र, तिरुवनंतपुरम की रोबोटिक्स प्रयोगशाला में विकासाधीन है।

इसरो का जीएसएलवी एमके III रॉकेट इस समय सुधार के दौर से गुज़र रहा है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह मनुष्य को अंतरिक्ष में ले जाने के लिए सुरक्षित है। इसकी पहली मानव-रहित उड़ान की योजना दिसंबर 2020 में निर्धारित है। क्रू मॉड्यूल प्रणाली भी विकासाधीन है, और अगले कुछ महीनों में इसके लिए इसरो कई नए परीक्षण करने का प्रयास करेगा ।

इसरो को अपनी अंतरिक्ष परियोजनाओं के लिए रोबोटिक सिस्टम बनाने का खासा अनुभव है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस पहले से ही कई अंतरिक्ष मिशनों के मूल में है। उदाहरण के लिए, अंतरिक्ष यानों और प्रक्षेपण यानों में उन्मुखीकरण, गति, उपांगों की तैनाती, दूरी आदि का स्वतः मूल्यांकन, प्रसंस्करण संग्रहित निर्देशों के माध्यम से किया जाता है। इसरो का मानव रोबोट 2022 में अंतरिक्ष यात्रियों के अस्तित्व और सुरक्षित यात्रा के लिए बने क्रू मॉड्यूल का परीक्षण करने में सक्षम होगा।

व्योम मित्र रोबोट का उपयोग एक प्रयोग के रूप में किया जा रहा है। यह मानव-रहित अंतरिक्ष उड़ान में मानव शरीर के अधिकांश कार्य करेगा। व्योम मित्र बातचीत करने, जवाब देने और वापस रिपोर्ट करने के लिये मनुष्य जैसा व्यवहार करेगा। यह अंतरिक्ष यात्रियों को भी पहचान सकता है, उनसे बातचीत कर सकता है और उनके प्रश्नों का उत्तर दे सकता है।

व्योम मित्र, जिनका मानव अंतरिक्ष उड़ान के लिए पहले जमीन पर परीक्षण किया जाएगा, मूलभूत कृत्रिम बुद्धि और रोबोटिक्स प्रणाली पर आधारित होगा। एक बार पूरी तरह से विकसित होने के बाद, व्योम मित्र मानव-रहित उड़ान के लिए ग्राउंड स्टेशनों से भेजे गए सभी निर्देशों को अंजाम देने में सक्षम होंगे। इनमें सुरक्षा तंत्र और स्विच पैनल का संचालन करने की प्रक्रियाएं शामिल होंगी। प्रक्षेपण और कक्षीय मुद्राओं को प्राप्त करना, मापदंडों के माध्यम से मॉड्यूल की निगरानी, पर्यावरण पर प्रतिक्रिया देना, जीवन सहायता प्रणाली का संचालन, चेतावनी निर्देश जारी करना, कार्बन डाईऑक्साइड कनस्तरों को बदलना, स्विच चलाना, क्रू मॉड्यूल की निगरानी, वॉयस कमांड प्राप्त करना, आवाज़ के माध्यम से प्रतिक्रिया देना आदि कार्य मानव रोबोट के लिए सूचीबद्ध किए गए हैं। व्योम मित्र आवाज़ के अनुसार होंठ हिलाने में सक्षम होगा। वे प्रक्षेपण, लैंडिंग और मानव मिशन के कक्षीय चरणों के दौरान अंतरिक्ष यान की सेहत जैसे पहलुओं से सम्बंधित ऑडियो जानकारी प्रदान करने में अंतरिक्ष यात्री के कृत्रिम दोस्त की भूमिका निभाएंगे।

व्योम मित्र अंतरिक्ष उड़ान के दौरान क्रू मॉड्यूल में होने वाले बदलावों को पृथ्वी पर वापस रिपोर्ट भी करेंगे, जैसे ऊष्मा विकिरण का स्तर, जिससे इसरो को क्रू मॉड्यूल में आवश्यक सुरक्षा स्तरों को समझने में मदद मिलेगी और अंततः समानव उड़ान कर सकेंगे।

डमी अंतरिक्ष यात्रियों वाले कई अंतरिक्ष मिशन रहे हैं। कुछ मिशनों में व्योम मित्र जैसे रोबोट का उपयोग भी किया जा चुका है। हाल ही में रिप्ले नामक एक अंतरिक्ष यात्री पुतले को ड्रैगन क्रू कैप्सूल पर स्पेस एक्स फाल्कन रॉकेट द्वारा मार्च 2019 में अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन पर भेजा गया था। रिप्ले को नासा के लिए 2020 में अंतरिक्ष में मानव भेजने के लिए स्पेस एक्स की तैयारी के एक हिस्से के रूप में बनाया गया था।

एयरबस द्वारा अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन पर सिमोन (CIMON, क्रू इंटरएक्टिव मोबाइल कंपेनियन) नामक आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस रोबोट बॉल को तैनात किया गया था। अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन पर एक फ्लोटिंग कैमरा रोबोट-इंट-बॉल (INt-ball) को जापान एयरोस्पेस एक्सप्लोरेशन एजेंसी (जैक्सा) द्वारा तैनात किया गया था ।

जापान में निर्मित एक मानव-रोबोट किरोबो को अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन के पहले जापानी कमांडर कोइची वाकाता के साथ सहायक के रूप में अंतरिक्ष स्टेशन पर प्रयोगों के संचालन के लिए भेजा गया था। किरोबो आवाज़ पहचान, चेहरे की पहचान, भाषा प्रसंस्करण और दूरसंचार क्षमताओं जैसी प्रौद्योगिकियों से लैस था। यांत्रिक कार्यों को अंजाम देने के लिए एक रूसी मानव-रोबोट, फेडोर को 2019 में अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन पर भेजा गया था। ***(स्रोत फीचर्स)***

तोतों में मनुष्यों के समान अंदाज़ लगाने की क्षमता

मनुष्यों में अनुभवों, जानकारियों और आंकड़ों के आधार पर निर्णय लेने की क्षमता होती है। हाल के एक अध्ययन में सामने आया है कि न्यूज़ीलैंड में पाए जाने वाले किआ तोते भी ऐसा कर सकते हैं। वानरों के अलावा किसी अन्य प्रजाति में पहली बार इस तरह का संज्ञान देखा गया है।

जैतूनी भूरे रंग के ये तोते अपनी हरकतों के लिए बदनाम हैं। अतीत में ये चोंच का छुरी की तरह उपयोग कर भेड़ों की चमड़ी को भेदते हुए उनकी रीढ़ की हड्डी के इर्द-गिर्द जमा वसा तक पहुंच जाते थे। आजकल ये खाने के सामान के लिए लोगों के पिट्ठू बैग को चीर देते हैं, और कार के वाइपर निकाल देते हैं।

यह देखने के लिए कि क्या किआ तोतों की शैतानी के साथ बुद्धिमत्ता जुड़ी है, युनिवर्सिटी ऑफ ऑकलैंड की मनोविज्ञानी एमालिया बास्टोस और उनके साथियों ने न्यूज़ीलैंड के क्राइस्टचर्च के पास स्थित अभयारण्य के छह किआ तोतों का अध्ययन किया। पहले तो शोधकर्ताओं ने तोतों को यह सिखाया कि काले रंग का टोकन चुनने पर हमेशा स्वादिष्ट भोजन मिलता है जबकि नारंगी टोकन से कभी भोजन नहीं मिलता। फिर उनके सामने पारदर्शी मर्तबानों में काले और नारंगी रंग के टोकन रखे गए। जब शोधकर्ताओं ने बंद मुट्ठी में मर्तबान से टोकन निकाले तब किआ तोते ने अधिकतर उन हाथों को चुना जिन्होंने उस मर्तबान से टोकन निकाले थे जिनमें नारंगी टोकन की तुलना में काले टोकन अधिक थे। ऐसा उन्होंने तब भी किया जब मर्तबानों में काले और नारंगी टोकन के बीच अंतर बहुत कम था (63 काले और 57 नारंगी)।

अगले परीक्षण में शोधकर्ताओं ने किआ तोतों के सामने दो पारदर्शी मर्तबान में दोनों रंगों के टोकन बराबर संख्या में रखे। लेकिन मर्तबानों को एक शीट की मदद से ऊपरी व निचले दो हिस्सों में बांटा गया था। हालांकि दोनों मर्तबानों में काले व नारंगी टोकन बराबर संख्या में थे लेकिन एक में ऊपर वाले खंड में ज़्यादा काले टोकन थे। शोधकर्ता मात्र ऊपर वाले खंड में हाथ डाल सकता था। इस स्थिति में किआ ने उन हाथों को चुना जिन्होंने उस मर्तबान से टोकन निकाले जिसके ऊपरी हिस्से में काले टोकन अधिक थे। इसके बाद किए गए अंतिम परीक्षण में भी किआ तोते ने उस शोधकर्ता के हाथ से टोकन लेना ज़्यादा पसंद किया जिसने काले टोकन अधिक बार निकाले थे।

इन परीक्षणों के आधार पर *नेचर कम्युनिकेशन* पत्रिका में शोधकर्ताओं का कहना है कि किआ तोतों में आंकड़ों के आधार पर अनुमान लगाने की क्षमता होती है। इससे लगता है कि मनुष्यों की तरह किआ में भी कई किस्म की सूचनाओं को एकीकृत करने की बौद्धिक क्षमता होती है। गौरतलब है कि पक्षियों और मनुष्यों के साझे पूर्वज लगभग 31 करोड़ वर्ष पूर्व थे, और दोनों की मस्तिष्क की संरचना भी काफी अलग है। एक मत यह रहा है कि इस तरह की बुद्धि के लिए भाषा की ज़रूरत होती है।

अलबत्ता, हार्वड युनिवर्सिटी की तोता संज्ञान विशेषज्ञ आइरीन पेपरबर्ग को लगता है कि किआ ने सहज ज्ञान का प्रदर्शन किया है ना कि सांख्यिकीय समझ का। वैसे उन्हें यह भी लगता है यदि किआ में सांख्यिकीय अनुमान लगाने की क्षमता है तो इस तरह की क्षमता से लैस जानवर भोजन की मात्रा की उपलब्धता और प्रजनन-साथियों की संख्या का अंदाज़ा लगा पाएंगे जो फायदेमंद होगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

सत्रहवीं शताब्दी की पहेली भंवरे की मदद से सुलझी

साल 1688 में एक आयरिश दार्शनिक विलियम मोलेनो ने अपने सहयोगी जॉन लॉके से एक सवाल पूछा था: कोई जन्मजात दृष्टिहीन व्यक्ति जिसने मात्र स्पर्श से चीज़ों को पहचानना सीखा है, यदि आगे चलकर उसमें देखने की क्षमता आ जाए, तो क्या वह सिर्फ देखकर चीज़ों को पहचान पाएगा? उनका यह सवाल *मोलेनो समस्या* के नाम से जाना जाता है। सवाल मूलतः यह है कि क्या मनुष्य में आकृतियां पहचानने की क्षमता जन्मजात होती है या क्या वे देखकर, स्पर्श से और अन्य इंद्रियों के माध्यम से इसे सीखते या अर्जित करते हैं? यदि दूसरा विकल्प सही है, तो इसमें बहुत समय लगना चाहिए।

कुछ वर्ष पूर्व इस गुत्थी को सुलझाने के एक प्रयास में कुछ ऐसे बच्चे शामिल किए गए थे जो जन्म से अंधे थे लेकिन बाद में उनकी दृष्टि बहाल हो गई थी। ये बच्चे तत्काल तो देखकर आकृतियां नहीं पहचान पाए थे लेकिन बहुत समय भी नहीं लगा था। लेकिन कुछ तो सीखना पड़ा था। यानी परिणाम अस्पष्ट थे। हाल ही में लंदन स्थित क्वीन मैरी युनिवर्सिटी के लार्स चिटका और उनके साथियों ने इस सवाल का जवाब खोजने की कोशिश एक बार फिर से की है।

प्रयोग भंवरों पर किया गया। अपने अध्ययन में उन्होंने पहले भंवरों को उजाले में गोले और घन में अंतर सीखने का प्रशिक्षण दिया - उजाले में, दो बंद पेट्री डिश में गोले और घन आकृतियां रखी गईं और उनमें से किसी एक को चुनने पर शकर का इनाम दिया गया। गोले और घन बंद पेट्री डिश में रखे थे इसलिए भंवरे उन्हें देख तो सकते थे लेकिन छू नहीं सकते थे। देखा गया कि भंवरे उस आकृति के साथ ज़्यादा समय बिताते हैं, जिसका सम्बंध शकर रूपी इनाम से है; यानी वे उस आकृति को पहचानते हैं।

इसके बाद उन्होंने यही जांच अंधेरे में की। यानी भंवरे वस्तुओं को छू तो सकते थे लेकिन देख नहीं सकते थे। शोधकर्ताओं ने पाया कि जिस आकृति के लिए भंवरों को शकर का पुरस्कार मिला था, उस आकृति के साथ भंवरों ने अधिक समय बिताया।

इसके बाद शोधकर्ताओं ने यही अध्ययन उल्टी तरह से किया - पहले उन्हें अंधेरे में प्रशिक्षित किया और उजाले में जांच की। इसमें भी, दोनों ही स्थितियों में जहां उन्हें वस्तु छूकर पहचानना था या देखकर, जिस आकृति के लिए भंवरों को शकर दी गई थी उस आकृति के पास अधिक वक्त बिताया।

कीटों में दृश्य पैटर्न को पहचानने की क्षमता का काफी अध्ययन हुआ है। शोधकर्ताओं को यह तो पहले से पता था कि कीट फूलों और मनुष्य के चेहरों के पेचीदा रंग-विन्यास को पहचान सकते हैं। लेकिन विन्यास पहचान के लिए ज़रूरी नहीं है कि मस्तिष्क में उस विन्यास का कोई चित्र बने। तो सवाल यह था कि क्या हमारे मस्तिष्क के समान कीटों के मस्तिष्क में भी वस्तु का कोई चित्रण बनता है।

लेकिन शोधकर्ताओं का मत है कि उनके अध्ययन में ये कीट एक किस्म की संवेदना से प्राप्त सूचना को किसी अन्य किस्म की संवेदना में तबदील करके वस्तु का चित्रण कर पाए। इसके आधार पर उनका कहना है कि इन भंवरों ने मोलेनो के सवाल का जवाब दे दिया है। अर्थात एक किस्म की संवेदना से निर्मित चित्र दूसरे किस्म की संवेदना द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है।

अलबत्ता, अन्य वैज्ञानिक इस प्रयोग की वास्तविक दुनिया में वैधता के बारे में शंकित हैं। जैसे भंवरे फूलों को पहचानने के लिए दृष्टि और गंध दोनों संकेतों पर निर्भर होते हैं। इसलिए ऐसे अध्ययन करना होंगे जो भंवरों की प्राकृतिक स्थिति से मेल खाएं। ***(स्रोत फीचर्स)***

कोविड-19 के खिलाफ लड़ाई की प्रगति

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

भारत में कोविड-19 के खिलाफ छिड़ी जंग ने मार्च की शुरुआत के बाद रफ्तार पकड़ी। जिसमें कोविड-19 की पहचान, उससे सुरक्षा, रोकथाम, चिकित्सकीय सलाह और मदद शामिल हैं। इस जंग को जीतने के उद्देश्य में निजी समूहों, उद्योगों, चिकित्सा समुदायों, वैज्ञानिकों और प्रौद्योगिकीविदों ने, वित्तीय सहयोग और शोध व विकास कार्य, दोनों तरह से सरकार की तरफ मदद के हाथ बढ़ाए हैं। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (DST), जैव प्रौद्योगिकी विभाग (DBT) (और इसके जैव प्रौद्योगिकी उद्योग सहायता परिषद. BIRAC), विज्ञान व इंजीनियरिंग अनुसंधान बोर्ड (SERB), वैज्ञानिक व औद्योगिक अनुसंधान परिषद (CSIR), भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (ICMR), DMR, स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय (MHFW), प्रतिरक्षा अनुसंधान व विकास संगठन (DRDO) जैसी कई सरकारी एजेंसियों ने कोविड-19 से निपटने के विशिष्ट पहलुओं पर केंद्रित कई अनुदानों की घोषणा की है। दूसरी ओर टाटा ट्रस्ट, विप्रो, महिंद्रा, वेलकम ट्रस्ट इंडिया अलायंस और कई बहुराष्ट्रीय फार्मा कंपनियां भी इस संयुक्त प्रयास में आगे आई हैं।

जांच, रोकथाम, सुरक्षा

सबसे पहले तो यह पता लगाना होता है कि कोई व्यक्ति इस वायरस से संक्रमित है या नहीं। चूंकि कोविड-19 नाक के अंदरूनी हिस्से और गले के नम हिस्से में फैलता है इसलिए यह पता करने का एक तरीका है थर्मो-स्क्रीनिंग (ताप-मापन) डिवाइस की मदद से किसी व्यक्ति के नाक और चेहरे के आसपास का तापमान मापना (जैसा कि हवाई अड्डों पर यात्रियों के आगमन के समय, या इमारतों और कारखानों में लोगों के प्रवेश करते समय किया जाता है)। जल्दी, विस्तारपूर्वक और सटीक जांच के लिए विदेश से मंगाए फुल बॉडी स्कैनर जैसे उपकरण बेहतर हैं जो शरीर के तापमान को कंप्यूटर मॉनीटर पर अलग-अलग रंगों से दर्शाते हैं। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण ने जांच के लिए 1,000 डिजिटल थर्मामीटर और 100 फुल-बॉडी स्कैनर दिए हैं।

ज़ाहिर है कि भारत में इन उपकरणों की ज़रूरत हज़ारों की संख्या में है। इस ज़रूरत ने, भारत के कुछ कंप्यूटर उद्योगपतियों को इस तरह के बॉडी स्कैनर भारत में ही बनाने के लिए प्रेरित किया है, जो कि एक सकारात्मक कदम है। हमें उम्मीद है कि ये बॉडी स्कैनर जल्द उपलब्ध होंगे।

इन उपकरणों द्वारा किए गए परीक्षण में जब कोई व्यक्ति पॉज़ीटिव पाया जाता है तो जैविक परीक्षण द्वारा उसके कोरोनावायरस से संक्रमित होने की पुष्टि करने की ज़रूरत होती है। एक महीने पहले तक हमें, इस परीक्षण किट को विदेश से मंगवाना पड़ता था। लेकिन आज एक दर्जन से अधिक भारतीय कंपनियां राष्ट्रीय समितियों द्वारा प्रमाणित किट बना रही हैं। इनमें खास तौर से मायलैब और सीरम इंस्टीट्यूट के नाम लिए जा सकते हैं जो एक हफ्ते में लाखों किट बना सकती हैं। इससे देश में विश्वसनीय परीक्षण का तेज़ी से विस्तार हुआ है। संक्रमित पाए जाने पर मरीज़ को उपयुक्त केंद्रों में अलग-थलग, लोगों के संपर्क से दूर (क्वारेंटाइन) रखने की ज़रूरत पड़ती है। यह काफी तेज़ गति और विश्वसनीयता के साथ किया गया है, जिसके बारे में आगे बताया गया है।

वायरस के हमले से अपने बचाव का एक अहम तरीका है मुंह पर मास्क लगाना। (हम लगातार यह सुन रहे हैं कि मास्क उपलब्ध नहीं हैं या अत्यधिक कीमत पर बेचे जा रहे हैं।) यह धारणा गलत है कि हमेशा मास्क लगाने की

ज़रूरत नहीं है। वेल्लोर के जाने-माने संक्रमण विशेषज्ञ डॉ. जैकब जॉन ने स्पष्ट किया है कि चूंकि वायरस हवा से भी फैल सकता है इसलिए सड़कों पर निकलते वक्त भी मास्क पहनना ज़रूरी है। इसलिए भारत के कई उद्यमी और व्यवसायी वाजिब दाम पर मास्क तैयार रहे हैं। व्हाट्सएप जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म बेबी डायपर (नए), पुरुषों की बनियान (नई), साड़ी के पल्लू और दुपट्टे जैसी चीज़ों से मास्क बनाने के जुगाड़ू तरीके बता रहे हैं। खुशी की बात है कि इस मामले में सरकार के स्पष्टीकरण और सलाह के बाद अधिकतर लोग मास्क लगाए दिख रहे हैं। टीवी चैनल भी इस दिशा में उपयोगी मदद कर रहे हैं। वे इस मामले में लोगों के खास सवालों और शंकाओं के समाधान के लिए विशेषज्ञों को आमंत्रित कर रहे हैं।

इसी कड़ी में, हैदराबाद के एल. वी. प्रसाद आई इंस्टीट्यूट के मेरे साथी डॉ. मुरलीधर रामप्पा ने हाल ही में चश्मा पहनने वाले लोगों को (और आंखों के डॉक्टरों को भी) सुरक्षा की दृष्टि से सलाह दी है। वे कहते हैंः यदि आप कॉन्टैक्ट लेंस पहनते हैं, तो कुछ समय के लिए चश्मा पहनना शुरु कर दें क्योंकि चश्मा पहनना एक तरह की सुरक्षा प्रदान करता है। अपनी आंखों की जांच करना बंद ना करें, लेकिन सावधानी बरतें। इस बारे में नेत्र चिकित्सक कुछ सावधानियां सुझा सकते हैं। अपनी आंखों की दवाइयों को ठीक मात्रा में अपने पास रखें, और अपनी आंखों को रगड़ने से बचें।

केंद्र और राज्य सरकारों और कई निजी अस्पतालों द्वारा अलग-थलग और क्वारेंटाइन केंद्र स्थापित किए जाने के अलावा कई निजी एजेंसियों(जैसे इन्फोसिस फाउंडेशन, साइएंट, स्कोडा, मर्सडीज़ बेंज और महिंद्रा) ने हैदराबाद, बैंगलुरु, हरियाणा, पश्चिम बंगाल में इस तरह के केंद्र स्थापित करने में मदद की है। यह सरकारों और निजी एजेंसियों द्वारा साथ आकर काम करने के कुछ उदाहरण हैं। जैसा कि वे कहते हैं, इस घड़ी में हम सब साथ हैं।

सुरक्षा (और इसके फैलाव को रोकने) की दिशा में एक और उत्साहवर्धक कदम है क्वारेंटाइन केंद्रों में रखे लोगों पर निगरानी रखने वाले उपकरणों, इनक्यूबेटरों, वेंटिलेटरों का बड़े पैमाने पर उत्पादन। महिंद्रा ने सफलतापूर्वक बड़ी तादाद में ठीक-ठाक दाम पर वेंटिलेटर बनाए हैं, और डीआरडीओ ने चिकित्सकों, नर्सों और पैरामेडिकल स्टॉफ के लिए सुरक्षा गाउन बनाने के लिए एक विशेष प्रकार का टेप बनाया है।

क्या भारत औषधि बना सकता है?

कोरोना संक्रमण से सुरक्षा के लिए टीका तैयार करने में भारत को संभवतः एक साल का वक्त लगेगा। हमें आणविक और औषधि-आधारित तरीके अपनाने की ज़रूरत है, जिसमें भारत को महारत हासिल है और उसके पास उम्दा आणविक और जीव वैज्ञानिकों की टीम है। फिलहाल सरकार तथा कुछ दवा कंपनियों ने कई दवाओं (जैसे फेविलेविर, रेमडेसेविर, एविजेन वगैरह) यहां बनाना और उपयोग करना शुरु किया है, और ज्ञात विधियों की मदद से इन दवाओं में कुछ बदलाव भी किए हैं। सीएसआईआर ने कार्बनिक रसायनज्ञों और बायोइंफॉर्मेटिक्स विशेषज्ञों को पहले ही इस कार्य में लगा दिया है, जो प्रोटीन की 3-डी संरचना का पूर्वानुमान कर सकते हैं ताकि सतह पर उन संभावित जगहों की तलाश की जा सकें जहां रसायन जाकर जुड़ सकें। मुझे पूरी उम्मीद है कि टीम के इन प्रयासों से हम इस जानलेवा वायरस पर विजय पाने वाली स्वदेशी दवा तैयार कर लेंगे। हां, हम कर सकते हैं।

और, अच्छी तरह से यह पता होने के बावजूद कि लाखों दिहाड़ी मजदूर अपने गांव-परिवार से दूर, बड़े शहरों और नगरों में रहते हैं, राज्य और केंद्र सरकारों ने उनके लिए कोई अग्रिम योजना नहीं बनाई थी। और ना ही लॉकडाउन के वक्त उनकी मज़दूरी की प्रतिपूर्ति के लिए कोई योजना बनाई गई थी, जबकि इस लॉकडाउन की वजह से वे अपने घर वापस भी नहीं जा सके। इसके चलते लॉकडाउन से सामाजिक दूरी बढ़ाने और इस संक्रमण के सामुदायिक फैलाव को रोकने में दिक्कत आई है। सामाजिक दूरी रखना भारतीय संस्कृति का हिस्सा नहीं है, जबकि भेड़चाल है। इस बात के प्रति सरकार के समाज वैज्ञानिक सलाहकार सरकार को पहले से ही आगाह कर देते तो समस्या को टाला जा सकता था। ***(स्रोत फीचर्स)***

कोविड-19 मरीज़ की देखभाल

नए कोरोनावायरस ने दुनिया भर में लाखों लोगों को संक्रमित कर दिया है। सबसे अच्छा तो यही होगा सामाजिक फासला सुनिश्चित करके स्वयं को और अपने परिजनों को इसके संक्रमण से बचाए रखें। लेकिन सावधानी के बावजूद यदि आपके परिवार या घर में किसी को इस वायरस का संक्रमण हो जाए तो क्या करें।

यदि ऐसा व्यक्ति उन लोगों में से नहीं है जिन्हें अनिवार्य रूप से अस्पताल में भर्ती करना चाहिए तो आपको घर पर ही उसकी देखभाल करनी होगी और अन्य लोगों को सुरक्षित भी रखना होगा। यानी आपको उस व्यक्ति को अलग-थलग करना होगा लेकिन साथ ही यह भी ध्यान देना होगा कि उसे भरपूर मात्रा में तरल पदार्थ मिलते रहें और तकलीफ कम से कम हो।

यदि आपके घर में कोई ऐसा व्यक्ति है जिसमें कोविड-19 के लक्षण दिख रहे हों - जैसे बुखार, सूखी खांसी, सांस लेने में दिक्कत. मांसपेशियों में दर्द, थकान और दस्त - तो किसी स्वास्थ्य केंद्र, अस्पताल या स्वास्थ्य कर्मी से संपर्क करें। हो सकता है कि वे आपको परीक्षण करवाने की सलाह दें। लेकिन ऐसे परीक्षण फिलहाल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए स्वास्थ्य कर्मी शायद आपको घर पर ही मरीज़ को अलग-थलग यानी आइसोलेट करने का परामर्श देंगे।

अच्छी बात है कि कोविड-19 के अधिकांश मामले गंभीर नहीं होते अर्थात अधिकांश लोग बगैर किसी उपचार के ठीक हो जाते हैं। लेकिन ये मरीज़ भी अन्य लोगों को संक्रमित कर सकते हैं।

ज़रूरत तो इस बात की होगी कि मरीज़ को एक अलग, हवादार कमरे में रखा जाए। संभव हो, तो मरीज़ के लिए बाथरूम भी अलग हो। मरीज़ के लिए तौलिया, चादरें, कप-प्लेट वगैरह भी अलग होना चाहिए और इन्हें नियमित रूप से साफ करना ज़रूरी है।

देखभाल करने वाले लोगों को नाक, मुंह वगैरह को मास्क से ढंककर रखना चाहिए और दस्ताने पहनना चाहिए। दस्ताने हटाने के तुरंत बाद हाथों को साबुन-पानी से कम से कम 20 सेकंड तक अच्छी तरह धोना चाहिए। वैसे भी हाथों से चेहरे को छूने से बचना चाहिए। चेहरे के लिए मास्क का उपयोग तो लगातार करना बेहतर है, खास तौर से जब आप मरीज़ के कमरे में हैं। मरीज़ को भी लगातार मास्क लगाए रखें।

यदि आप मरीज़ के टट्टी, पेशाब वगैरह को छूते हैं तो दस्ताने व मास्क पहनकर करें और काम समाप्त होते ही पहले दस्ताने निकालकर फेंक दें, हाथों को अच्छी तरह साफ करें, उसके बाद चेहरे के मास्क को हटाएं और एक बार फिर से हाथ धोएं। याद रखें कि जिन सतहों को बार-बार छूना पड़ता है, जैसे दरवाज़े के हैंडल, नल वगैरह, उन्हें भी अच्छी तरह साफ करें।

यह ध्यान देना ज़रूरी होता है कि मरीज़ की हालत कब गंभीर रूप ले रही है। यदि मरीज़ को सांस लेने में दिक्कत होने लगे, या बुखार तेज़ हो जाए, सीने में दर्द हो, गफलत होने लगे या होंठ नीले पड़ने लगें तो तुरंत चिकित्सक को दिखाएं या अस्पताल ले जाएं।

कोविड-19 का कोई इलाज तो नहीं है लेकिन अस्पताल मरीज़ को इन पेचीदगियों से बचने में मदद कर सकते हैं। जैसे मरीज़ को सांस की दिक्कत से छुटकारा दिलाने के लिए ऑक्सीजन दी जा सकती है। मरीज़ को स्वस्थ होने में मदद के लिए उसे खूब आराम और तरल पदार्थों की ज़रूरत होती है। यदि बुखार तेज़ हो तो बुखार कम करने की दवा दी जा सकती है।

यदि दवा के बगैर भी मरीज़ का बुखार लगातार 72 घंटे तक न बढ़े और यदि सांस फूलने के लक्षण में सुधार हो और पहली बार लक्षण प्रकट होने के बाद सात दिन बीत चुके हों, तो डॉक्टर की सलाह से आइसोलेशन समाप्त किया जा सकता है। लेकिन उससे पहले कोविड-19 का टेस्ट करवा लेना होगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

कोरोना वायरस किसी सतह पर कितनी देर रहता है?

कोरोना वायरस का प्रकोप थमने का नाम नहीं ले रहा है। यह तो स्पष्ट है कि यह वायरस व्यक्ति से व्यक्ति में फैलता है। यह भी स्पष्ट है कि खांसी-छींक के साथ निकलने वाली सूक्ष्म बूंदों की फुहार इस वायरस को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुंचने में मदद करती हैं। लिहाज़ा रोकथाम का सबसे प्रमुख उपाय तो यही है कि व्यक्ति आपस में बहुत करीब न आएं। वैज्ञानिक बताते हैं कि इन बूंदों के माध्यम से यह वायरस 2 मीटर का फासला तय कर सकता है। खांसते-छींकते वक्त मुंह और नाक को कपड़े वगैरह से ढंकना वायरस के प्रसार को रोकने का कारगर उपाय है।

एक बात यह भी कही जा रही है कि हाथों को बार-बार साबुन से धोएं और अपने हाथों से मुंह, नाक व आंखों को छूने से बचें। कारण यह है कि यह वायरस हाथों पर काफी देर तक सक्रिय अवस्था में रह सकता है।

लेकिन आम लोगों के मन में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि जब यह हाथों पर टिका रह सकता है, तो क्या अन्य सतहों (जैसे मेज़, बर्तन, दरवाज़ों के हैंडल, किचन प्लेटफॉर्म, टॉयलेट सीट वगैरह) पर भी बना रह सकता है? और यदि ऐसा है तो ये चीज़ें कितने समय के लिए वायरस की वाहक बनी रहेंगी।

मुख्तसर जवाब तो यही है कि हम नहीं जानते। लेकिन फिर भी कुछ अनुमान तो लगाए गए हैं।

जैसे *दी न्यू इंगलैंड जर्नल ऑफ मेडिसिन* में प्रकाशित एक हालिया अध्ययन से पता चला है कि यह वायरस हवा में तीन घंटे तक जीवन-क्षम बना रहता है। तांबे की सतह पर 4 घंटे, कार्डबोर्ड पर 24 घंटे तथा प्लास्टिक व स्टील के बर्तनों पर 72 घंटे तक जीने-योग्य बना रहता है।

एक अन्य अध्ययन सीधे नए वायरस पर तो नहीं किया गया है बल्कि इसी के भाई-बंधुओं पर किए गए पूर्व अध्ययनों पर आधारित है। *दी जर्नल ऑफ हॉस्पिटल इंफेक्शन* में प्रकाशित इस अध्ययन का निष्कर्ष है कि (यदि यह वायरस अन्य मानव कोरोना वायरस का मिला-जुला परिवर्तित रूप है) तो यह धातु, कांच या प्लास्टिक जैसी सतहों पर 9 दिनों तक जीवन-क्षम बना रह सकता है। तुलना के लिए देखें कि सामान्य फ्लू का वायरस ऐसी सतहों पर अधिक से अधिक 48 घंटे तक जीवन-क्षम रहता है।

अब आप ऐसी सतहों को छूने से तो नहीं बच सकते। इसलिए बेहतर है कि समय-समय पर हाथ धोते रहें और हाथों से मुंह, नाक और आंखों को छूने से बचें।

लेकिन एक खुशखबरी भी है। यदि तापमान 30 डिग्री सेल्सियस से अधिक हो तो ये वायरस इतने लंबे समय तक जीवन-क्षम नहीं रह पाते। यानी जब गर्मी बढ़ेगी तो इस वायरस के परोक्ष रूप से फैलने की संभावना कम होती जाएगी। ***(स्रोत फीचर्स)***

अगले अंक में....

- **सरगम एक प्रागैतिहासिक तोहफा है**
- **वायरस रोगों का इलाज भी कर सकते हैं**
- **कोरोनावायरस से उबरने का मतलब क्या है?**
- **प्रजातियों के बीच फैलने वाली जानलेवा बीमारियां**

कोरोनावायरस पर जीत की तैयारी

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

पिछले छह हफ्तों में कई ऐसे शोध पत्र प्रकाशित हुए हैं जो जानलेवा कोरोनावायरस (COVID-19) के संक्रमण से निपटने के चिकित्सकीय उपचार की पेशकश करते हैं। ये प्रयास इस संक्रमण के खिलाफ सुरक्षात्मक टीका विकसित करने के प्रयासों के अतिरिक्त हैं।

अब तक हम सब इससे तो वाकिफ हो ही गए हैं कि यह नया कोरोनवायरस (जिसे वैज्ञानिक SARS-CoV-2 भी कहते हैं) दिखता कैसा है। यह गेंद सरीखा गोल है जिसका पूरा शरीर स्पाइक्स (खूंटों) से ढंका होता है। ये स्पाइक्स वायरस के कामकाजी सिरे हैं जो ग्लायकोप्रोटीन से बने होते हैं। सीएटल स्थित एक समूह ने क्रायो-इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी की मदद से इन स्पाइक-प्रोटीन्स की संरचना का तफसील से अध्ययन करके पता लगाया कि ये स्पाइक्स वायरस को मेज़बान कोशिका में प्रवेश करने में किस तरह मदद करते हैं। स्पाइक-प्रोटीन कोशिका की सतह पर ACE2 (एंजियोटेंसिन-कंवर्टिंग एंज़ाइम-2) नामक एक विशिष्ट एंज़ाइम की पहचान करता है, इसकी गतिविधि को अवरुद्ध करता है, मेज़बान कोशिका में प्रवेश करता है और उसे नुकसान पहुंचाता है।

इतिहास से सबक

इतिहास को देखें तो पाते हैं कि नए कोरोनावायरस की यह करतूत वास्तव में ऐतिहासिक है। कई लोगों ने 1918 में फैली स्पैनिश फ्लू महामारी के कारण हुई तबाही का अध्ययन किया, जिसमें लाखों लोगों की मौत हो गई थी। स्पैनिश फ्लू से पीड़ित लोगों के फेफड़े गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हो गए थे और वे निमोनिया और एक्यूट रेस्पिरेटरी सिंड्रोम का शिकार हो गए थे।

एक बार फिर यही हालात SARS-CoV कोरोनावायरस नामक रोगजनक द्वारा होने वाले सीवियर एक्यूट रेस्पिरेटरी सिंड्रोम (SARS) में भी देखे गए। शोध में पता चला कि ACE2 नामक एंज़ाइम वायरस के हमले के खिलाफ लड़ता है और इससे होने वाली क्षति से बचाता है। इसी प्रकार से वर्ष 2012 में सी. टिकेलिस और एम.सी. थॉमस द्वारा *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ पेप्टाइड* में प्रकाशित पर्चे में भी बताया गया था कि ACE2 उच्च रक्तचाप, मधुमेह और हृदय रोगों में फायदेमंद है। यह स्वास्थ्य और रोग में रेनिन एंजियोटेंसिन सिस्टम का महत्वपूर्ण नियंत्रक है।

इसीलिए सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता खास तौर से दुनिया भर के वरिष्ठ नागरिकों और समस्याओं से पीड़ित लोगों से गुज़ारिश कर रहे हैं वे घर पर ही सुरक्षित रहें।

आणविक-आनुवंशिक आधार

हाल ही में इन विशिष्ट रोगजनक के लिए वुहान स्थित सीएएस लैब का एक बहुत ही महत्वपूर्ण शोध पत्र प्रकाशित हुआ है। इसमें नए कोरोनोवायरस का आनुवंशिक अनुक्रम, ACE2 को निष्क्रिय कर प्रभावित व्यक्ति में प्रवेश करने के तरीके के बारे में तफसील से बताया गया है। और सबसे महत्वपूर्ण बात यह बताई गई है कि ठीक हो चुके मरीज़ों के रक्त-सीरम का उपयोग संक्रमित व्यक्तियों के उपचार में हो सकता है। (यह खास तौर से इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि जब 2006 में सार्स का प्रकोप हुआ था तब भी यही बताया गया था कि ठीक हो चुके मरीज़ों के सीरम का उपयोग पीड़ितों के उपचार में करने से यह उनमें इससे विरुद्ध एंटीबॉडी IgG उपलब्ध करा देता है। इसी आधार पर कुछ वैज्ञानिकों ने सुझाव दिया है कि यह तरीका COVID-19 से निपटने में भी मददगार हो सकता है।

वुहान लैब के प्रकाशन के समय ही *सेल* पत्रिका में एक और पेपर प्रकाशित हुआ जिसमें बताया गया कि नए कोरोनावायरस का कोशिका में प्रवेश, ना सिर्फ ACE2 पर बल्कि मेज़बान कोशिका के एक और एंजाइम, TMPRSS2, पर भी निर्भर करता है। शोधकर्ताओं ने सुझाव दिया है कि इसे एक ऐसे प्रोटीएज़ अवरोधक द्वारा अवरुद्ध किया जा सकता है जो चिकित्सकीय रूप से प्रमाणित हो चुका है। यह एक महत्वपूर्ण नई खबर है क्योंकि हम हमारे इस भयानक शत्रु नए कोरोनोवायरस को हराने के लिए इसी

तरह के अवरोधक रसायनों की तलाश कर सकते हैं।

तो क्या करें?

हमें अपने शत्रु पर काबू पाने के चार अलग-अलग तरीके दिखते हैं। सबसे पहला, जिसे लोगों को करना ही चाहिए, सुरक्षात्मक सामग्री और तरीके अपनाएं, वायरस के सामुदायिक फैलाव को रोकें, घर पर रहें और सुरक्षित रहें; दूसरा, ठीक हो चुके रोगियों के सीरम का पीड़ितों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने के लिए उपयोग; तीसरा प्रभावितों के इलाज के लिए दवाओं की तलाश और चौथा सफल टीका तैयार करना। इनमें समय लगता है लेकिन उम्मीद है कि कुछ महीने ही लगेंगे, साल नहीं। इसलिए हम इन सभी तरीकों को अपनाकर इससे निपटने की राह में हैं।

SARS-CoV-2 और COVID-19 के बारे में कुछ शब्द। दो दिन पहले यू.के. के अखबार *दी गार्जियन* में बताया गया था कि दुनिया भर की 35 से अधिक कंपनियां इसका टीका तैयार करने की दौड़ में लगी हैं, इनमें से कम-से-कम 4 कंपनियां अपने टीकों का परीक्षण जानवरों पर कर चुकी हैं। इनमें से कुछ ने इसके पहले SARS और MERS के खिलाफ विकसित किए गए टीके में कुछ बदलाव करके COVID-19 के खिलाफ टीका तैयार किया है। और दो कंपनियां COVID-19 के वाहक RNA पर आधारित वैक्सीन तैयार कर रही हैं। लेकिन मनुष्यों पर इसके चिकित्सकीय परीक्षण में, इनकी प्रभावकारिता और दुष्प्रभावों की जांच करने में समय लगेगा, जो एक वर्ष या उससे अधिक तक हो सकता है। इसलिए हम इन सभी तरीकों से इससे निपटने का प्रयास करते रहें।

हम अनुभव से जानते हैं कि जहां संकट है, वहां आशा है; जहां आशा है, वहां प्रयास हैं; जहां प्रयास हैं, वहां समाधान हैं; और जहां समाधान हैं, वहां सफलता है। ***(स्रोत फीचर्स)***

कोरोना के खिलाफ लड़ाई में टेक्नॉलॉजी बना हथियार

प्रदीप

इस समय देश ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया कोरोना वायरस नामक एक ऐसे दुष्चक्र में फंसी है जिससे निकलने के लिए असाधारण कदमों और उपायों की ज़रूरत है। महामारी कोविड-19 फैलाने वाले कोरोना वायरस से संक्रमित लोगों की संख्या दुनिया में साढ़े सात लाख तक पहुंच गई है और 33 हज़ार से अधिक लोग जान गंवा चुके हैं। हर रोज़ संक्रमित लोगों और मौतों की संख्या बढ़ती जा रही है और यह महामारी नए इलाकों में पांव पसारती जा रही है।

विशेषज्ञों का मानना है कि हम बिग डैटा, क्लाउड कंप्यूटिंग, सुपर कम्प्यूटर, आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस, रोबोटिक्स, 3-डी प्रिंटिंग, थर्मल इमेज़िंग और 5-जी जैसी टेक्नॉलॉजी का इस्तेमाल करते हुए बेहद प्रभावी ढंग से कोरोनावायरस से मुकाबला कर सकते हैं। इस महामारी से निपटने के लिए यह बेहद ज़रूरी है कि सरकार लोगों की निगरानी रखे। आज टेक्नॉलॉजी की बदौलत सभी लोगों पर एक साथ हर समय निगरानी रखना मुमकिन है।

कोरोना वायरस के खिलाफ अपनी लड़ाई में कई सरकारों ने टेक्नॉलॉजी को मोर्चे पर लगा दिया है। टेक्नॉलॉजी का ही इस्तेमाल करते हुए चीन ने इस वायरस पर काफी हद तक काबू पाया है। लोगों के स्मार्टफोनों, चेहरा पहचानने वाले हज़ारों-लाखों कैमरों, और अपने शरीर का तापमान रिकॉर्ड करने और अपनी मेडिकल जांच की अनुमति देने की सहज इच्छा रखने वाली जनता के बल पर चीनी अधिकारियों ने न केवल शीघ्रता से यह पता कर लिया कि कौन व्यक्ति कोरोना वायरस का संभावित वाहक है बल्कि वह उन पर नज़र भी रख रहे थे कि वे किस-किस के संपर्क में आते हैं। कई सारे ऐसे मोबाइल ऐप्स हैं जो नागरिकों को संक्रमित व्यक्ति के आसपास मौजूद होने के बारे में चेतावनी देते हैं।

कोरोनावायरस को रोकने के लिए चीन ने सबसे पहले 'कलर कोडिंग टेक्नॉलॉजी' का इस्तेमाल किया है। इस सिस्टम के लिए चीन की दिग्गज टेक कंपनी अलीबाबा और टेनसेंट ने साझेदारी की है। यह सिस्टम स्मार्टफोन ऐप के रूप में काम करता है। इसमें यूज़र्स को उनकी यात्रा के दौरान उनकी मेडिकल हिस्ट्री के मुताबिक ग्रीन, येलो और रेड कलर का क्यूआर कोड दिया जाता है। ये कलर कोड ही यह निर्धारित करते हैं कि यूज़र को क्वॉरेंटाइन किया

जाना चाहिए या फिर उसे सार्वजनिक स्थान पर जाने की इजाज़त दी जानी चाहिए। चीनी सरकार ने इस सिस्टम के लिए कई चेक पॉइंट्स बनाए हैं, जहां लोगों की चेकिंग होती हैं। यहां उन्हें उनकी यात्रा और मेडिकल हिस्ट्री के मुताबिक क्यूआर कोड दिया जाता है। अगर किसी को ग्रीन कलर का कोड मिलता है, तो वह इसका उपयोग कर किसी भी सार्वजनिक स्थान पर जा सकता है। तो दूसरी तरफ अगर किसी को लाल कोड मिलता है, तो उसे क्वारेंटाइन कर दिया जाता है। इस सिस्टम का इस्तेमाल 200 से ज़्यादा चीनी शहरों में हुआ है। भारत में भी ऐप आधारित कलर कोडिंग टेक्नॉलॉजी विकसित करने के प्रयास ज़ोर-शोर से किए जा रहे हैं।

भारत में भी रेलवे स्टेशनों, हवाई अड्डों और अन्य सार्वजनिक क्षेत्रों के अधिकारी दूर से तापमान रिकॉर्ड करने के लिए स्मार्ट थर्मल स्कैनर का इस्तेमाल कर रहे हैं। इस तरह संभावित कोरोना वायरस वाहक की पहचान करने में आसानी हो रही है। भारत में बाज़ार-केंद्रित हेल्थ टेक स्टार्टअप कंपनियां भी रोग के निदान के लिए नवाचार की ओर कमर कस रही हैं, इससे हेल्थ केयर सिस्टम पर दबाव कम हो रहा है। कन्वर्जेंस कैटालिस्ट के संस्थापक जयंत कोल्ला बैंगलुरु स्थित स्टार्टअप, वनब्रेथ का उदाहरण देते हैं। इसने सस्ते और टिकाऊ वेंटिलेटर विकसित किए हैं। ये भारत की ग्रामीण आबादी को ध्यान में रखकर किया गया है, जहां अस्पतालों और डॉक्टरों तक पर्याप्त पहुंच का अभाव है। एक अन्य बैंगलुरु-आधारित स्टार्टअप डे-टु-डे ने घर पर क्वारेंटाइन रोगियों को विभिन्न सुविधाओं और अस्पतालों में रखने के लिए एक केयर मैनेजमेंट सॉल्यूशन विकसित किया है और इसके ज़रिए बाद में निदान गतिविधियों जैसे कि स्वास्थ्य जांच, आहार, अनुवर्ती परीक्षण आदि को भी पूरा किया जाता है।

चीन सहित विभिन्न देशों ने कोरोना वायरस को मात देने के लिए रोबोट का इस्तेमाल किया है। ये रोबोट होटल से लेकर ऑफिस तक में साफ-सफाई का काम करते हैं और साथ ही आस-पास की जगह पर सैनिटाइज़र का छिड़काव भी करते हैं। वहीं, दूसरी तरफ चीन की कई टेक कंपनियां भी इन रोबोट का उपयोग मेडिकल सैंपल भेजने के लिए करती थीं। कोरोना वायरस को रोकने के लिए चीन ने ड्रोन का इस्तेमाल किया है। इन ड्रोन्स के ज़रिए चीनी सरकार ने लोगों तक फेस मास्क और दवाइयां पहुंचाई हैं। इसके अलावा इन डिवाइसेस के ज़रिए कोरोना वायरस से संक्रमित क्षेत्रों में सैनिटाइज़र का छिड़काव भी किया गया है।

कोरोना वायरस को ट्रैक करने के लिए फेस रिकॉग्निशन सिस्टम का इस्तेमाल बेहद कारगर साबित हो रहा है। इस सिस्टम में इंफ्रारेड डिटेक्शन तकनीक मौजूद है, जो लोगों के शरीर के तापमान जांचने में मदद करती है। इसके अलावा फेस रिकॉग्निशन सिस्टम यह भी बताता है कि किसने मास्क पहना है और किसने नहीं।

वैज्ञानिक कोरोना के टीके और दवाई विकसित करने के लिए आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस (एआई) का इस्तेमाल कर रहें हैं। ध्यान देने वाली बात यह है कि एंटीबायोटिक दवाओं के बैक्टीरिया पर घटते असर को ध्यान में रखते हुए पिछले कुछ वर्षों से वैज्ञानिक एआई की मदद से ऐसे प्लेटफॉर्म तैयार करने की कोशिश रहे हैं जिससे नए किस्म की दवाओं की खोज की जा सके और एंटीबायोटिक दवाओं को बेअसर करने वाले बैक्टीरिया का खात्मा किया जा सके। हाल ही में वैज्ञानिक समुदाय को इस दिशा में एक बड़ी कामयाबी हासिल हुई है। अमेरिका के एमआईटी के वैज्ञानिकों ने आर्टिफिशिल इंटेलीजेंस (एआई) के मशीन-लर्निंग एल्गोरिदम की मदद से पहली बार एक नया और बेहद शक्तिशाली एंटीबायोटिक तैयार किया है। शोधकर्ताओं का दावा है कि इस एंटीबायोटिक से तमाम घातक बीमारियों को पैदा करने वाले बैक्टीरिया को भी मारा जा सकता है। इसको लेकर दावे इस हद तक किए जा रहे हैं कि इस एंटीबायोटिक से उन सभी बैक्टीरिया का खात्मा किया जा सकता है जो सभी ज्ञात एंटीबायोटिक दवाओं के खिलाफ प्रतिरोधी क्षमता हासिल कर चुके हैं। इस नए एंटीबायोटिक की खोज ने आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस की मदद से कोरोना के खिलाफ एक कारगर एंटी वायरल दवा विकसित करने की वैज्ञानिकों की उम्मीदों को बढ़ा दिया है।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि आज टेक्नॉलॉजी ने किसी महामारी से लड़ने के लिए हमारी क्षमताओं को काफी हद तक बढ़ा दिया है। जिसकी बदौलत हम परंपरागत रक्षात्मक उपायों को करते हुए महामारी के विरुद्ध कारगर ढंग से लड़ने में सक्षम हुए हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

कोरोना संक्रमितों की सेवा में अब रोबोट

जाहिद खान

दुनिया की आबादी का एक बड़ा हिस्सा फिलवक्त कोविड-19 से बुरी तरह से जूझ रहा है। डॉक्टर, नर्स और तमाम स्वास्थ्य कर्मचारी कोरोना संक्रमित मरीज़ों के इलाज और देखभाल में जी-जान से लगे हुए हैं। समूची मानवजाति के ऊपर आई इस संकट की घड़ी में अब रोबोट भी इंसान के मददगार बन रहे हैं। उन्हें इस खतरनाक बीमारी से उबरने में मदद कर रहे हैं।

राजस्थान में जयपुर स्थित एसएमएस हॉस्पिटल में कोरोना संक्रमित मरीज़ों की सेवा के लिए तीन रोबोट की ड्यूटी लगाई गई है। ये रोबोट कोरोना संक्रमित व्यक्तियों तक दवा, पानी व दीगर ज़रूरी सामान ले जाने का काम करेंगे। रोबोट की ड्यूटी यहां लगाए जाने से कोरोना पीड़ितों के आसपास मेडिकल स्टाफ का मूवमेंट कम हो जाएगा। इसका सबसे बड़ा फायदा यह होगा कि हॉस्पिटल में इंसानों की वजह से कोविड-19 वायरस के प्रसार की जो संभावना रहती है, वह काफी कम हो जाएगी। मरीज़ के संपर्क में न आ पाने से बाकी लोगों में संक्रमण नहीं फैलेगा, वे सुरक्षित रहेंगे। ज़ाहिर है, जब डॉक्टर, नर्स और तमाम स्वास्थ्य कर्मचारी सुरक्षित रहेंगे, तो वे अपना काम और भी बेहतर तरीके से कर सकेंगे। देखा जाए तो यह एक छोटी-सी शुरुआत ही है। देश भर के बाकी अस्पतालों में डॉक्टर और स्वास्थ्यकर्मी अपने स्वास्थ्य और जान की ज़रा-सी भी परवाह किए बिना मुस्तैदी से अपने फर्ज़ को अंजाम देने में लगे हुए हैं।

'रोबोट सोना 2.5' नामक ये रोबोट पूरी तरह भारतीय तकनीक और मेक इन इंडिया प्रोजेक्ट के तहत जयपुर में ही बनाए गए हैं। युवा रोबोटिक्स एक्सपर्ट भुवनेश मिश्रा ने इन्हें तैयार किया है। सबसे बड़ी खासियत यह है कि 'सोना 2.5' रोबोट लाइन फॉलोअर नहीं हैं बल्कि ऑटो नेविगेशन रोबोट हैं। यानी इन्हें मूव कराने के लिए किसी भी तरह की लाइन बनाने की ज़रूरत नहीं होती है। इंसानों की तरह ये रोबोट सेंसर की मदद से खुद नेविगेट करते हुए अपना रास्ता बनाते हैं और लक्ष्य तक पहुंच जाते हैं। इन्हें आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस, आईओटी और एसएलएएम तकनीक का शानदार इस्तेमाल करके तैयार किया गया है।

सर्वर के कमांड मिलने पर ये रोबोट सबसे पहले अपने लिए एक छोटे रास्ते का मैप क्रिएट करते हैं। अच्छी बात यह है कि ये किसी भी तरह के फर्श या फ्लोर पर आसानी से मूव कर सकते हैं। इन्हें वाई-फाई सर्वर के ज़रिए लैपटॉप या स्मार्ट फोन से भी ऑपरेट किया जा सकता है। ऑटो नेविगेशन होने से इन्हें अंधेरे में भी मूव कराया जा सकता है।

एक खूबी और है कि इनमें ऑटो डॉकिंग प्रोग्रामिंग की गई है, जिससे बैटरी डिस्चार्ज होने से पहले ही ये खुद चार्जिंग पॉइंट पर जाकर ऑटो चार्ज हो जाएंगे। एक बार चार्ज होने पर ये सात घंटे तक काम कर सकते हैं और इन्हें चार्ज होने में तीन घंटे का समय लगता है। यानी इन रोबोट में वे सारी खूबियां हैं, जिनके दम पर ये अपना काम बिना रुके, बदस्तूर करते रहेंगे। विज्ञान और वैज्ञानिकों का मानवजाति के लिए यह वाकई एक चमत्कारिक उपहार है जिसे नमस्कार किया जाना चाहिए।

राजस्थान में ही नहीं, केरल में भी यह अभिनव प्रयोग शुरू किया जा रहा है। कोच्चि की ऐसी ही स्टार्टअप कंपनी ने अस्पतालों के लिए एक खास रोबोट तैयार किया है जो मेडिकल स्टाफ की मदद करेगा। तीन चक्कों वाला यह रोबोट खाना और दवाइयां पहुंचाने के काम आएगा। यह पूरे अस्पताल में आसानी से घूम सकता है। इसे सात लोगों ने मिलकर महज 15 दिनों के अंदर तैयार किया है। इसी तरह

की पहल नोएडा के फेलिक्स अस्पताल ने भी की है।

डॉक्टरों एवं मेडिकल स्टाफ को कोविड-19 जैसे घातक वायरस से बचाने के लिए रोबोट का इस्तेमाल होगा। कोरोना वायरस के बढ़ते मामलों के बीच दुनिया भर के अस्पताल काम के बोझ से दबे हुए हैं। मरीज़ों का इलाज और देखभाल करते हुए डॉक्टरों को ज़रा-सी भी फुर्सत नहीं मिल रही है। मरीज़ों की तादाद रोज़ बढ़ती जा रही है। ऐसे में ज़्यादा से ज़्यादा मेडिकल स्टाफ की ज़रूरत है।

इसी तरह की परेशानियों के मद्देनजर आयरलैंड के एक अस्पताल में भी रोबोट्स को काम पर लगाने का फैसला किया गया है। डबलिन के मेटर मिजरिकॉरडी यूनिवर्सिटी अस्पताल में रोबोट्स प्रशासनिक और कंप्यूटर का काम कर रहे हैं, जो आम तौर पर नर्सों के ज़िम्मे होता है। ये रोबोट कोविड-19 से जुड़े नतीजों का विश्लेषण भी कर रहे हैं। इन रोबोट को बनाने वाले एक्सपर्ट्स अपने काम से अभी संतुष्ट नहीं हैं। वे कोशिश कर रहे हैं कि ये रोबोट डिसइन्फेक्शन करने, टेंपरेचर नापने और सैंपल कलेक्ट करने का काम भी कुशलता से कर सकें।

मानव जैसी स्पाइन टेक्नॉलॉजी वाले दुनिया के पहले रोबोट का सबसे पहले इस्तेमाल, उत्तर प्रदेश के रायबरेली स्थित रेल कोच फैक्टरी में पिछले साल 18 नवंबर को किया गया था। 'सोना 1.5' नामक इस स्वदेशी ह्यूमनॉयड रोबोट का निर्माण भी रोबोटिक्स एक्सपर्ट भुवनेश मिश्रा ने किया है। इस रोबोट का इस्तेमाल दस्तावेज़ों को एक स्थान से दूसरी जगह ला-ले जाने, विज़िटर्स का स्वागत करने, टेक्निकल डिस्कशन और ट्रेनिंग में हो रहा है।

दरअसल आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और रोबोटिक्स के विकास के साथ मानव-रोबोटों को ऐसे कार्यों के लिए तेज़ी से इस्तेमाल किया जा रहा है, जिनमें बार-बार एक-सी क्रियाएं करनी होती हैं। इस तरह के कामों में वे पूरी तरह से कारगर साबित होते हैं। निकट भविष्य में इसरो अपने महत्त्वाकांक्षी मिशन 'गगनयान' के लिए भी एक रोबोट 'व्योम मित्र' भेजेगा। देखना है कि रोबोट कैसे हमसफर साबित होते हैं ***(स्रोत फीचर्स)***

चेहरा छुए बिना रहना इतना कठिन क्यों है?

जैसे-जैसे नए कोरोनोवायरस का प्रकोप दुनिया में फैल रहा है, लोगों को हिदायत दी जा रही है कि वे एक-दूसरे से कम-से-कम 6 फीट दूर रहें, अपने हाथों को धोते रहें और अपने चेहरे को छूने से बचें। और लोग इन हिदायतों का पालन करने की कोशिश भी कर रहे हैं।

लेकिन नाक-आंख वगैरह में होने वाली खुजली नज़रअंदाज करने की हिदायत देना आसान है, नज़रअंदाज़ करना नहीं। यहां तक हिदायत देने वाले भी खुद को रोक नहीं पाते। 2015 में, *अमेरिकन जर्नल ऑफ इंफेक्शन कंट्रोल* में प्रकाशित एक अध्ययन के मुताबिक संक्रामक रोग की रोकथाम के लिए प्रशिक्षित मेडिकल स्कूल के छात्रों ने एक व्याख्यान के दौरान एक घंटे में 23 बार अपने चेहरे को छुआ।

तो सवाल यह उठता है कि खुद को अपना चेहरा छूने से रोकना इतना मुश्किल क्यों है? लोग अक्सर दांतों की सफाई, बालों को संवारने, मेक-अप करने जैसे कामों के चलते अपना चेहरा छूते रहते हैं। दिनचर्या में शामिल चेहरा छूने की ये आदतें फिर आपको निरुद्देश्य ढंग से चेहरा छूने को प्रेरित करती हैं, जैसे आंखों को मसलना।

यह प्रवृत्ति सिर्फ आदत की बात भी नहीं है। केनटकी सेंटर फॉर एन्गज़ाइटी एंड रिलेटेड डिसऑर्डर्स के संस्थापक-निदेशक और मनौवैज्ञानिक केविन चैपमैन *लाइव साइंस* में बताते हैं कि "यह इस बात को सुनिश्चित करने की आदत है कि हम सार्वजनिक तौर पर कैसे दिख रहे हैं।" उदाहरण के लिए, मुंह के आसपास भोजन के अंश लगे होना यह दर्शा सकता है कोई व्यक्ति गंदा है या वह अपनी प्रस्तुति का ध्यान नहीं रखता है। अपने चेहरे को छूकर लोग खुद को संवार सकते हैं और यह भी दर्शा सकते हैं कि वे स्वयं के प्रति जागरूक हैं।

हालांकि चेहरे को छूना कई लोगों में एक बुरी आदत बन जाती है जो चिंताग्रस्त लोगों में और भी बुरी साबित हो सकती है। चैपमैन कहते हैं कि उच्च स्तर के न्यूरोटिज़्म वाले लोग तनाव को कम करने के लिए दोहराव वाले व्यवहार करते हैं। जैसे नाखून चबाना या बालों में हाथ फेरना वगैरह। यह व्यक्ति के जीवन को प्रभावित कर

सकता है, जैसे हो सकता है इसकी वजह से उसे अन्य लोगों के साथ जुड़ाव बनाने में दिक्कत हो या वह शक्तिहीन या लज्जित महसूस करे। *ब्रेन रिसर्च* में प्रकाशित एक छोटे नमूने पर किए गए अध्ययन के मुताबिक, कम गंभीर स्तर पर, लोग तनाव के समय में खुद को शांत रखने के लिए चेहरे को छूते हैं।

रोग नियंत्रण और रोकथाम केंद्र (सीडीसी) के अनुसार, नए कोरोनावायरस से संक्रमित होने का मुख्य कारण चेहरा छूना नहीं है। फिर भी, सीडीसी नाक, मुंह या आंखों को ना छूने की सलाह देता है क्योंकि यह वायरस इस तरह से फैलता है। और यदि आपने किसी संक्रमित या दूषित सतह को छुआ है तो हाथों को साबुन और पानी से धोना या हैंड सैनिटाइज़र का उपयोग करना कदापि ना भूलें।

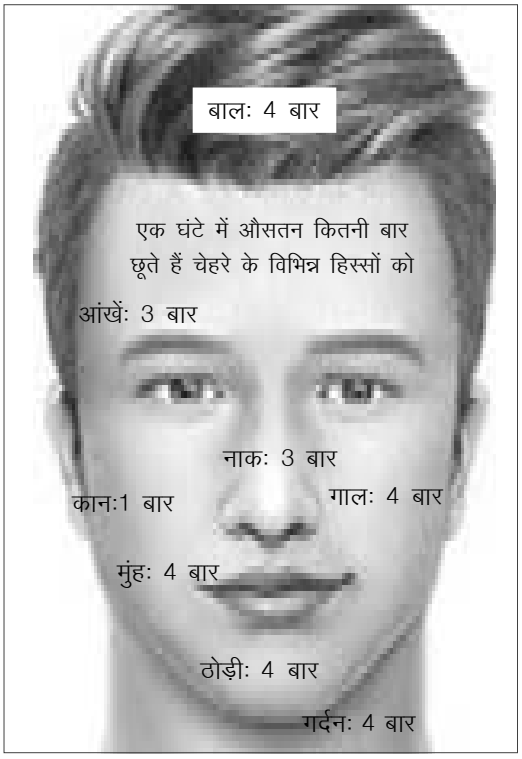

चैपमैन बताते हैं कि जब लोग अपना चेहरा ना छूने के लिए सतर्क होते हैं तो संभावना होती है कि वे सामान्य से अधिक बार अपना चेहरा छू लें। जैसे किसी व्यक्ति को गुलाबी हाथी के बारे में ना सोचने को कहा जाए और वह तुरंत गुलाबी हाथी के बारे में सोचने लगता है। इस आदत को छोड़ने के लिए यह सोचें कि आप कब-कब अपना चेहरा छूते हैं, लेकिन यदि आप खुद को चेहरा छूते हुए पाएं तो खुद को दंडित न करें। ***(स्रोत फीचर्स)***

इस अंक के चित्र निम्नलिखित स्थानों से लिए गए हैं -

Page 2 - https://i.ytimg.com/vi/M_1aEagSu1Q/maxresdefault.jpg
Page 4 - https://content.assets.pressassociation.io/2020/03/03151631/ef6488e3-fca3-4d20-b120-08196f64c837.jpg?w=640
Page 5 - https://static.scientificamerican.com/sciam/cache/file/FE4CAAB7-04E2-4814-8287EFDB643EED18_source.jpeg?w=590&h=800&9FA8A53B-05B6-4658-AA3FDBC6EC7511AA
Page 6 - https://edition.cnn.com/2020/02/28/health/how-to-wash-hands-coronavirus-trnd/index.html
Page 13- https://clubfirst.org/wp-content/uploads/2020/03/IMG_20200328_165309-1024x768.jpg
Page 15- https://rapidfireart.com/wp-content/uploads/2015/12/How-to-draw-a-Face-Thumbnail-324x235-9_1.jpg
Page 18- https://media2.s-nbcnews.com/j/newscms/2020_13/3286121/200327-china-baby-mn-0850_c8e1b0bbd6ee061496e21da51094295d.fit-2000w.jpg
Page 20- https://media.nature.com/lw800/magazine-assets/d41586-020-00548-w/d41586-020-00548-w_17726712.jpg
Page 21- https://img.etimg.com/thumb/msid-75016464,width-643,height-362,imgsize-90183/.jpg
Page 22- https://i.dailymail.co.uk/i/pix/2016/05/23/17/3489903800000578-3605159-image-a-24_1464021347575.jpg
Page 24- https://i.pinimg.com/236x/61/28/29/612829e8228b075d020bcd9e3d326fd8.jpg
Page 25- https://www.genengnews.com/wp-content/uploads/2020/01/image3again.png
Page 26- https://d2r55xnwy6nx47.cloudfront.net/uploads/2020/03/AIantibiotics-2880x1620_Lede.jpg
Page 27- https://d7hftxdivxxvm.cloudfront.net/?resize_to=width&src=https%3A%2F%2Fartsy-media-uploads.s3.amazonaws.com%2FC9oueL8fLHBwotGKVWc-EA%252FHaring%2B.jpg&width=1200&quality=80
Page 28- https://diversitynursing.com/wp-content/uploads/2018/08/97328f63008b3c20084941b6b3a0ec18-660x330.jpg
Page 30- https://www.researchgate.net/profile/Johnny_Stiban/publication/274013152/figure/fig3/AS:267537132814350@1440797231149/Cytology-of-apoptosis-The-different-stages-of-apoptotic-cell-death-start-by-cellular.png
Page 35- https://www.sciencemag.org/sites/default/files/styles/article_main_image_-_1280w__no_aspect_/public/Undertaker_bees_1280x720.jpg?itok=Gt82Rstg
Page 36- https://www.thethirdpole.net/wp-content/uploads/2018/10/Map-%E2%80%93-GFX-%E2%80%93-Char-Dham-Project.jpg

कोरोना वायरस के खिलाफ दवाइयों के जारी परीक्षण

नए कोरोना वायरस (SARS-CoV-2) ने दुनिया को संकट में डाल दिया है। इस नए वायरस की वजह से कोविड-19 नामक रोग होता है जिसके लक्षणों में बुखार, सूखी खांसी, सांस लेने में परेशानी और थकान शामिल हैं। नाक बहना, दस्त, गले में दर्द तथा बदन दर्द इसके अन्य लक्षण हैं।

फिलहाल दुनिया भर में चार लाख से अधिक लोग संक्रमित हैं और 10 हज़ार से ज़्यादा मौतें इस वायरस की वजह से हो चुकी हैं। फिलहाल इसके लिए कोई दवा उपलब्ध नहीं है। इसलिए स्वाभाविक रूप से पूरा ध्यान रोकथाम पर टिका है। रोकथाम का मुख्य उपाय व्यक्ति से व्यक्ति को होने वाले संक्रमण को रोकना है। इसके लिए भारत समेत कई देशों ने विविध तरीके अपनाए हैं। लॉकडाउन इसी का एक रूप है जिसके ज़रिए व्यक्तियों का आपसी संपर्क कम से कम करने का प्रयास किया जाता है।

यह सही है कि फिलहाल कोविड-19 के लिए कोई दवा नहीं है किंतु दुनिया भर में विभिन्न दवाइयों का परीक्षण चल रहा है और कुछ प्रयोगशालाएं इसके खिलाफ टीका विकसित करने के प्रयास में युद्ध स्तर पर जुटी हैं। ताज़ा रिपोर्ट के मुताबिक इस समय दुनिया की अलग-अलग संस्थाओं द्वारा 86 क्लीनिकल परीक्षण चल रहे हैं और जल्दी ही सकारात्मक परिणाम की उम्मीद है। आइए ऐसे कुछ प्रयासों पर नज़र डालें।

1. जापानी फ्लू की औषधि

जापान की कंपनी फ्यूजीफिल्म टोयोमा केमिकल द्वारा विकसित एक औषधि ने कोविड-19 के कुछ हल्के-फुल्के और मध्यम तीव्रता के मामलों में उम्मीद जगाई है। यह एक वायरस-रोधी दवा है - फैविपिरेविर। जापान में इसका उपयोग फ्लू के उपचार में किया जाता है। हाल ही में इसे कोविड-19 के प्रायोगिक उपचार हेतु अनुमोदित किया गया है। अब तक इसका परीक्षण वुहान और शेनज़ेन में 340 मरीज़ों पर किया गया है और बताया गया है कि यह सुरक्षित है और उपचार में कारगर है।

यह दवा (फैविपिरेविर) कुछ वायरसों को अपनी संख्या बढ़ाने से रोकती है और इस तरह से यह बीमारी की अवधि को कम कर देती है और फेफड़ों की सेहत को बेहतर बनाती है। वैसे अभी इस अध्ययन का प्रकाशन किसी समकक्ष-समीक्षित शोध पत्रिका में नहीं हुआ है।

2. क्लोरोक्वीन और हायड्रॉक्सी-क्लोरोक्वीन

इन दवाइयों को मलेरिया, ल्यूपस और गठिया के उपचार हेतु मंज़ूरी मिली है। मनुष्यों और प्रायमेट जंतुओं की कोशिकाओं पर किए गए प्रारंभिक परीक्षण से संकेत मिला है कि ये दवाइयां कोविड-19 के इलाज में कारगर हो सकती हैं।

पूर्व (2005) में किए गए एक अध्ययन में पता चला था कि संवर्धित मानव कोशिकाओं का उपचार क्लोरोक्वीन से किया जाए तो SARS-CoV का प्रसार थम जाता है। नया वायरस SARS-CoV-2 इससे मिलता-जुलता है। क्लोरोक्वीन SARS-CoV को मानव कोशिकाओं में प्रवेश करके संख्यावृद्धि करने से रोकती है। हाल में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि क्लोरोक्वीन और उस पर आधारित हायड्रॉक्सी-क्लोरोक्वीन दोनों ही नए वायरस की संख्यावृद्धि पर भी रोक लगाती हैं।

फिलहाल चीन, दक्षिण कोरिया, फ्रांस और यूएस में कोविड-19 के कुछ मरीज़ों को ये दवाइयां दी गई हैं और परिणाम आशाजनक बताए जाते हैं। अब यूएस का खाद्य व औषधि प्रशासन इन दवाइयों का विधिवत क्लीनिकल परीक्षण शुरू करने वाला है। फरवरी में ऐसे 7 क्लीनिकल परीक्षणों का पंजीयन हो चुका था। इसके अलावा, मिनेसोटा विश्वविद्यालय में इस बात का भी अध्ययन किया जा रहा है कि क्या हायड्रॉक्सी-क्लोरोक्वीन मरीज़ की देखभाल करने वालों को रोग से बचा सकती है।

हायड्रॉक्सी-क्लोरोक्वीन से सम्बंधित एक अन्य अध्ययन फ्रांस में भी किया गया है। इसके तहत कुछ मरीज़ों को अकेला हायड्रॉक्सी-क्लोरोक्वीन दिया गया और कुछ मरीज़ों को हायड्रॉक्सी-क्लोरोक्वीन और एक अन्य दवा एज़िथ्रोमायसीन दी गई। एज़िथ्रोमायसीन एक एंटीबायोटिक है। शोधकर्ताओं

का कहना है कि जिन मरीज़ों को ये दवाइयां दी गईं, उनमें SARS-CoV-2 की मात्रा में फ्रांस के अन्य मरीज़ों की अपेक्षा काफी तेज़ी से गिरावट आई। लेकिन इस अध्ययन में तुलनात्मक आकलन का कोई प्रावधान नहीं था। वैसे भी कहा जा रहा है कि इन दवाइयों का उपयोग काफी सावधानी से किया जाना चाहिए, खास तौर से गुर्दे की समस्याओं से पीड़ित मरीज़ों के संदर्भ में।

3. एबोला की नाकाम दवा

जिलीड साइन्सेज़ ने एक दवा रेमडेसिविर विकसित की थी जिसका परीक्षण एबोला के मरीज़ों पर किया गया था। अब इस दवा को कोविड-19 के मरीज़ों पर आजमाया जा रहा है। रेमडेसिविर एबोला के इलाज में तो नाकाम रही लेकिन प्रयोगशालाओं में किए गए अध्ययनों से यह प्रमाणित हो चुका है कि यह दवा SARS-CoV-2 जैसे अन्य वायरसों की वृद्धि को रोक सकती है। प्रायोगिक तश्तरियों में किए गए प्रयोगों में रेमडेसिविर मानव कोशिकाओं को SARS-CoV-2 के संक्रमण से बचाती है। अभी यूएस के खाद्य व औषधि प्रशासन ने कोविड-19 के गंभीर मरीज़ों के लिए रेमडेसिविर के अनुकंपा उपयोग की अनुमति दे दी है।

चीन व यूएस में 5 क्लीनिकल परीक्षण इस बात की जांच कर रहे हैं कि क्या रेमडेसिविर कोविड-19 के रोग की अवधि को कम कर सकती है और उसके साथ होने वाली पेचीदगियों को कम कर सकती है। कई डॉक्टरों का विचार है कि यही सबसे कारगर दवा साबित होगी। लेकिन अध्ययनों से पता चला है कि यह तभी ज़्यादा कारगर होती है जब रोग की शुरुआत में दे दी जाए। वैसे अभी इस दवा के असर को लक्षणों के स्तर पर ही परखा गया है, खून में वायरस की मात्रा वगैरह पर इसके असर का आकलन अभी शेष है। कुछ डॉक्टरों ने इसके साइड प्रभावों पर भी चिंता व्यक्त की है।

4. एड्स दवाइयों का मिश्रण

शुरू-शुरू में तो लोपिनेविर और रिटोनेविर के मिश्रण से बनी दवा केलेट्रा ने काफी उत्साह पैदा किया था लेकिन आगे चलकर पता चला कि इससे मरीज़ों को कोई खास फायदा नहीं होता है। कुल 199 मरीज़ों में से कुछ को केलेट्रा दी गई जबकि कुछ मरीज़ों को प्लेसिबो दिया गया। देखा गया कि केलेट्रा का सेवन करने वाले कम मरीज़ों की मृत्यु हुई लेकिन अंतर बहुत अधिक नहीं था। और तो और, दोनों के रक्त में वायरस की मात्रा एक समान ही रही। बहरहाल, अभी इस सम्मिश्रण पर कई और अध्ययन जारी हैं और उम्मीद की जा रही है कि जल्द ही आशाजनक परिणाम मिलेंगे।

5. गौण प्रभावों के लिए दवा

कोविड-19 के कुछ मरीज़ों में देखा गया है कि स्वयं वायरस उतना नुकसान नहीं करता जितना कि उनका अपना अति-सक्रिय प्रतिरक्षा तंत्र कर देता है। इसलिए प्रतिरक्षा तंत्र पर नियंत्रण रखने के लिए उपयोग की जाने वाली दवा टॉसिलिज़ुमैब को आजमाया जा रहा है। जल्दी ही कोविड-19 निमोनिया से ग्रस्त मरीज़ों पर ऐसा परीक्षण करने की योजना है। इसी प्रकार की एक अन्य दवा सैरीलुमैब के परीक्षण पर भी काम चल रहा है।

6. रक्तचाप की दवाइयां

कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि रक्तचाप की औषधि लोसार्टन कोविड-19 के मरीज़ों के लिए मददगार साबित हो सकती है। मिनेसोटा विश्वविद्यालय ने इस दवा के दो क्लीनिकल परीक्षण शुरू किए हैं। लोसार्टन दरअसल कोशिकाओं पर उपस्थित एक ग्राही को अवरुद्ध करता है। एंजियोटेंसिन-2 नामक रसायन इसी ग्राही की मदद से कोशिका में प्रवेश करके रक्तचाप को बढ़ाता है। SARS-CoV-2 एंजियोटेंसिन-कंवर्टिंग एंज़ाइम-2 (ACE2) के ग्राही से जुड़ता है। सोच यह है कि जब लोसार्टन इन ग्राहियों को बाधित कर देगा तो वायरस कोशिका में प्रवेश नहीं कर पाएगा। लेकिन शंका यह व्यक्त की गई है कि लोसार्टन जैसी दवाइयां ACE2 के उत्पादन को बढ़ा देंगी और वायरस के कोशिका प्रवेश की संभावना बढ़ भी सकती है। इटली में 355 कोविड-19 मरीज़ों पर किए गए एक अध्ययन में पता चला कि जिन मरीज़ों की मृत्यु हुई उनमें से तीन-चौथाई उच्च रक्तचाप से पीड़ित थे। हो सकता है कि उच्च रक्तचाप ने ही इन्हें ज़्यादा खतरे में डाला हो।

कुल मिलाकर, दुनिया भर में कोविड-19 के लिए दवा

की खोज के प्रयास ज़ोर-शोर से चल रहे हैं लेकिन इसमें काफी जटिलताएं हैं। फिर भी इतनी कोशिशों के परिणाम ज़रूर लाभदायक होंगे। अलबत्ता, एक सावधानी आवश्यक है। ये दवाइयां अभी परीक्षण के चरण में हैं। स्वयं इनका उपयोग करना नुकसानदायक भी हो सकता है। ***(स्रोत फीचर्स)***

गर्भ में कोरोनावायरस से संक्रमण की आशंका

एक ताज़ा रिपोर्ट के अनुसार चीन में तीन शिशुओं में जन्म से पहले कोरोनावायरस के संक्रमण की आशंका जताई गई है। हालांकि विशेषज्ञों का मानना है कि यह परिणाम अनिर्णायक हैं और गर्भावस्था के दौरान इस वायरस के मां से बच्चे में संक्रमित होने के कोई पुख्ता सबूत नहीं है।

एक अन्य रिपोर्ट में वुहान युनिवर्सिटी के डॉक्टर कोविड-19 से संक्रमित महिला के बारे में बताते हैं जिसने सीज़ेरियन सेक्शन से एक बच्ची को जन्म दिया था। *जर्नल ऑफ अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन* में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार प्रसव के दौरान महिला ने एन95 मास्क पहना था और जन्म के पश्चात शिशु को मां से अलग रखा गया था। नवजात को तुरंत क्वारेंटाइन में रखा गया लेकिन उसमें कोविड-19 संक्रमण का कोई लक्षण नहीं दिखा।

जन्म के दो घंटे पश्चात किए गए परीक्षण से पता चला कि नवजात में SARS-CoV-2 के विरुद्ध दो प्रकार की एंटीबॉडी, IgG और IgM, का स्तर अधिक पाया था। गौरतलब है कि IgG एंटीबॉडी तो शिशु को गर्भावस्था में मां से प्राप्त होती है जबकि IgM एंटीबॉडी गर्भनाल को पार करने में सक्षम नहीं होती है। रिपोर्ट के मुताबिक नवजात में IgM एंटीबॉडी का होना भ्रूण में इस संक्रमण को दर्शाता है। इसके अलावा, नवजात में श्वेत रक्त कोशिकाओं के प्रतिरक्षा प्रणाली रसायन, साइटोकाइंस, के स्तर में भी वृद्धि पाई गई जो संक्रमण का द्योतक हो सकता है। एक अन्य अध्ययन में ज़्होंगनान अस्पताल के डॉक्टरों ने SARS-CoV-2 की एंटीबॉडी का पता लगाने के लिए 6 नवजात के रक्त के नमूनों का विश्लेषण किया। उन्हें 5 नमूनों में IgG का उच्च स्तर प्राप्त हुआ जबकि 2 नमूनों में IgM का उच्च स्तर देखा गया। दिलचस्प बात यह रही कि सभी नवजात में SARS-CoV-2 टेस्ट निगेटिव था। ऐसे में यह बता पाना मुश्किल है कि यह नवजात वायरस से संक्रमित थे या नहीं।

ऐसी आशंका है कि एंटीबॉडी के बढ़े हुए स्तर का कारण माताओं के प्लेसेंटा का क्षतिग्रस्त या असामान्य होना हो सकता है, जिससे IgM प्लेसेंटा से गुज़रकर शिशुओं में पहुंच गया हो। गौरतलब है कि IgM परीक्षण फाल्स पॉज़िटिव और फाल्स नेगेटिव परिणाम भी दे सकते हैं।

इसके अलावा, लंदन में एक SARS-CoV-2 संक्रमित महिला के नवजात में भी इस वायरस के पॉज़िटिव परिणाम देखे गए। हालांकि इस मामले में भी स्पष्ट नहीं है कि यह वायरस नवजात में जन्म लेने से पहले आया या उसके बाद। कोविड-19 से संक्रमित नौ गर्भवती महिलाओं पर किए गए प्रारंभिक अध्ययन में SARS-CoV-2 का कोई सबूत नहीं मिला है जिससे यह कहा जा सके कि यह मां से बच्चे में पहुंचा है। ***(स्रोत फीचर्स)***

कोरोना वायरस किसी प्रयोगशाला से नहीं निकला है

नए कोरोना वायरस की वजह से दुनिया परेशान है, वैज्ञानिक इसका इलाज ढूंढने में दिन-रात एक कर रहे हैं, सरकारें इसे फैलने से रोकने के कठिन प्रयास कर रही हैं। लेकिन पूरी कहानी में षडयंत्र की बू न हो तो कुछ लोगों को मज़ा नहीं आता। तो यह सुझाव दिया गया कि यह नया जानलेवा वायरस SARS-CoV-2 वुहान की प्रयोगशाला में बनाकर जानबूझकर छोड़ा गया है। हाल ही में स्क्रिप्स रिसर्च इंस्टीट्यूट के वैज्ञानिकों ने गहन विश्लेषण के आधार पर स्पष्ट कर दिया है कि SARS-CoV-2 कहीं किसी प्रयोगशाला की साज़िश नहीं है। तो उन्होंने यह कैसे पता लगाया?

उनके शोध कार्य का ब्यौरा *नेचर मेडिसिन* शोध पत्रिका के 17 मार्च के अंक में प्रकाशित हुआ है। वैज्ञानिकों के दल ने इन नए वायरस के जीनोम (यानी पूरी जेनेटिक सामग्री) की तुलना सात ऐसे कोरोना वायरसों से की जो मनुष्यों को संक्रमित करते हैं: सार्स, मर्स और सार्स-2 (ये तीनों गंभीर रोग पैदा करते हैं), HKU1, NL63, OC43 और 229E (जो हल्की बीमारी के लक्षण पैदा करते हैं)। शोधकर्ताओं का कहना है कि "हमारे विश्लेषण से साफ तौर पर पता चलता है कि SARS-CoV-2 प्रयोगशाला की कृति या जानबूझकर सोद्देश्य बनाया गया वायरस नहीं है।"

स्क्रिप्स रिसर्च इंस्टीट्यूट में प्रतिरक्षा विज्ञान और सूक्ष्मजीव विज्ञान के एसोसिएट प्रोफेसर क्रिस्टियान एंडरसन और उनके साथियों ने वायरस की सतह के उभारों के कंटक प्रोटीन का जेनेटिक सांचा देखा। कोरोना वायरस इन कंटकों का उपयोग किसी कोशिका की सतह को पकड़कर रखने और उसके अंदर प्रवेश करने के लिए करता है। शोधकर्ताओं ने इन कंटक प्रोटीन के दो प्रमुख गुणधर्मों के लिए ज़िम्मेदार जीन शृंखला को देखा। ये दो मुख्य गुणधर्म होते हैं - संडसी (हुक) और छेदक। संडसी वह हिस्सा होता है जो कोशिका की सतह पर चिपक जाता है और छेदक वह हिस्सा होता है जो कोशिका झिल्ली को खोलकर वायरस को अंदर घुसने में मदद करता है।

विश्लेषण से पता चला कि हुक वाला हिस्सा इस तरह विकसित हुआ है कि वह मानव कोशिका की बाहरी सतह पर उपस्थित ACE2 नामक ग्राहियों से जुड़ जाता है। जुड़ने में यह इतना कारगर है कि वैज्ञानिकों का ख्याल है कि यह जेनेटिक इंजीनियरिंग का नहीं बल्कि प्राकृतिक चयन का परिणाम है।

उन्हें ऐसा क्यों लगता है? SARS-CoV-2 एक अन्य वायरस का बहुत नज़दीकी सम्बंधी है जो सार्स के लिए ज़िम्मेदार होता है। वैज्ञानिकों ने इस बात का अध्ययन कर लिया है कि SARS-CoV और SARS-CoV-2 में क्या अंतर हैं। इनके जेनेटिक कोड में कई महत्वपूर्ण अंतर देखे गए हैं। लेकिन जब कंप्यूटर मॉडल तैयार किया गया तो SARS-CoV-2 के उत्परिवर्तन उसे मानव कोशिका से जुड़ने में बहुत मददगार नहीं रहे। यदि किसी प्रयोगशाला ने जानबूझकर ये परिवर्तन किए होते तो वे कदापि ऐसे उत्परिवर्तनों को नहीं चुनते जो कंप्यूटर मॉडल के हिसाब से मददगार नहीं हैं। अध्ययन का निष्कर्ष है कि प्रकृति कहीं अधिक चतुर है और उसने सर्वथा नए उत्परिवर्तनों को चुना है।

एक और मुद्दा है। कुल मिलाकर, इस वायरस की संरचना अन्य कोरोना वायरसों से बहुत अलग है। इसकी संरचना चमगादड़ों और पैंगोलिन में पाए जाने वाले वायरस के कहीं अधिक समान है। इन वायरसों का ज़्यादा अध्ययन नहीं हुआ है और इन्होंने मनुष्यों को हानि पहुंचाई हो, ऐसी कोई रिपोर्ट भी नहीं है।

"यदि कोई एक नया कोरोना वायरस एक रोगजनक के रूप में विकसित करना चाहता तो वह इसे किसी ऐसे वायरस की बुनियाद पर निर्मित करता जो जाना-माना रोगजनक हो।"

वायरस आया कहां से और कैसे? यह सवाल सिर्फ वैज्ञानिक रुचि का सवाल नहीं है बल्कि SARS-CoV-2 के भावी परिणामों से जुड़ा है। शोध समूह ने दो परिदृश्य प्रस्तुत किए हैं।

पहला परिदृश्य मानव आबादी को प्रभावित करने वाले कुछ ऐसे कोरोना वायरस से मेल खाता है जो सीधे किसी

अन्य जंतु से आए हैं। सार्स के मामले में वायरस सिवेट (मुश्कबिलाव) से आया था और मिडिल ईस्ट रेस्पिरेटरी सिंड्रोम (मर्स) के मामले में वह ऊंट से मनुष्य में आया था। अनुसंधान से पता चला है कि SARS-CoV-2 चमगादड़ से मनुष्य में आया है। चमगादड़ से यह वायरस एक मध्यस्थ जंतु (संभवतः पैंगोलिन) में पहुंचा और वहां से मनुष्य में।

यदि यह परिदृश्य हकीकत है तो इस वायरस के मनुष्य में पहुंचने से पहले ही मनुष्य को संक्रमित करने की इसकी क्षमता (रोगजनक क्षमता) तैयार हो चुकी होगी।

दूसरा परिदृश्य यह है कि इसके रोगजनक लक्षण जंतु से मनुष्य में पहुंचने के बाद विकसित हुए हैं। पैंगोलिन में उत्पन्न कुछ कोरोना वायरस ऐसे हैं जिनमें हुक की संरचना SARS-CoV-2 जैसी होती है। इस तरह से पैंगोलिन ने वायरस को मनुष्य के शरीर में पहुंचा दिया और एक बार मनुष्य शरीर में प्रवेश के बाद वायरस ने बाकी के लक्षण (कोशिका के अंदर घुसने के लिए ज़रूरी औज़ार) विकसित कर लिए होंगे। एक बार कोशिका में घुसने की क्षमता आ जाए तो यह वायरस एक से दूसरे मनुष्य में फैलना संभव हो गया होगा।

इस तरह की तकनीकी जानकारी से लैस होकर वैज्ञानिक इस महामारी का भविष्य बता पाएंगे। यदि यह वायरस मनुष्य में पहुंचने से पहले ही रोगजनक था तो इसका मतलब है कि मनुष्यों में से इसके खात्मे के बाद भी यह सम्बंधित जंतु में पनपता रहेगा और फिर से हमला कर सकता है। दूसरी ओर, यदि दूसरा परिदृश्य सही है तो इसके वापिस लौटने की संभावना कम है क्योंकि तब इसे फिर से मानव शरीर में प्रवेश करके एक बार फिर नए सिरे से रोगजनक क्षमता विकसित करनी होगी। ***(स्रोत फीचर्स)***

कोरोना वायरस के स्रोत पर गहराता रहस्य

विश्व भर में तबाही मचाने वाले कोरोना वायरस के स्रोत की पहचान करने के लिए वैज्ञानिकों को काफी मशक्कत करनी पड़ रही है। आनुवंशिक विश्लेषण के आधार पर चीनी वैज्ञानिकों ने चींटी खाने वाले पैंगोलिन को इसका प्रमुख संदिग्ध बताया था। अन्य तीन पैंगोलिन कोरोना वायरस के जीनोम के अध्ययन के बाद वैज्ञानिक इसे अभी भी एक दावेदार के रूप में देखते हैं, लेकिन गुत्थी अभी पूरी तरह सुलझी नहीं है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि जिस तरह 2002 में सिवेट (मुश्कबिलाव) से कोरोना वायरस मनुष्यों में आया था उसी तरह इस रोगजनक ने किसी जीव से ही मनुष्यों में प्रवेश किया होगा। फिलहाल चाइनीज़ सेंटर फॉर डिसीस कंट्रोल एंड प्रिवेंशन सहित चीन की तीन प्रमुख टीमें इसकी उत्पत्ति का पता लगाने की कोशिश कर रही हैं।

पैंगोलिन पर संदेह करने के कुछ खास कारण हैं। चीन में पैंगोलिन के मांस की काफी मांग है और शल्क का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा में किया जाता है। हालांकि चीन में इसकी बिक्री पर प्रतिबंध है फिर भी इसकी तस्करी आम बात है। शोधकर्ताओं के अनुसार तस्करी किए गए पैंगोलिन से प्राप्त कोरोना वायरस, आनुवंशिक रूप से लोगों में मिले कोरोना वायरस के नमूनों से 99 प्रतिशत मेल खाता है। लेकिन यह परिणाम पूरे जीनोम पर आधारित नहीं है। यह जीनोम के एक विशिष्ट हिस्से से सम्बंधित है जिसे रिसेप्टर-बाइंडिंग डोमेन (आरबीडी) कहा जाता है। पूरे जीनोम के स्तर पर मनुष्यों और पैंगोलिन से प्राप्त वायरस का डीएनए 90.3 प्रतिशत ही मेल खाता है।

आरबीडी कोरोना वायरस का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

यह वायरस को कोशिका में प्रवेश करने की क्षमता देता है। अन्य शोधकर्ताओं के अनुसार दो वायरसों के आरबीडी में 99 प्रतिशत समानता होने के बाद भी उन्हें एक-दूसरे से सम्बंधित नहीं माना जा सकता है। विभिन्न अध्ययनों में 85.5 प्रतिशत से 92.4 प्रतिशत समानता पाई गई है।

मैकमास्टर युनिवर्सिटी, कनाडा में अध्ययनरत अरिंजय बैनर्जी के अनुसार पूर्व में सार्स वायरस का 99.8 प्रतिशत जीनोम सिवेट बिल्ली के जीनोम से मेल खाता पाया गया था, जिसके चलते सिवेट को इसका स्रोत माना गया था।

अभी तक मनुष्यों से प्राप्त कोरोना वायरस सर्वाधिक (96 प्रतिशत) चमगादड़ों से प्राप्त कोरोना वायरस से मेल खाता है। लेकिन इन दो वायरसों में आरबीडी साइट्स का अंतर पाया गया है। इससे यह पता चलता है कि चमगादड़ों से यह कोरोना वायरस सीधा मनुष्यों में नहीं बल्कि किसी मध्यवर्ती जीव से मनुष्यों में प्रवेश किया है।

कुछ अन्य अध्ययन मामले को और अधिक रहस्यमयी बना रहे हैं। यदि यह वायरस पैंगोलिन से आया है तो फिर जिस देश से इसको तस्करी करके लाया गया है वहां इसके संक्रमण की कोई रिपोर्ट क्यों नहीं है? लेकिन एक चिंता यह व्यक्त की गई है कि पैंगोलिन को वायरस का स्रोत मानकर लोग इसे मारने न लगें जैसा सार्स प्रकोप के समय सिवेट के साथ हुआ था। ***(स्रोत फीचर्स)***

चिड़िया घर में बाघिन कोरोना संक्रमित

वाइल्डलाइफ कंज़र्वेशन सोसायटी ने हाल ही में घोषणा की है कि न्यूयॉर्क के एक चिड़ियाघर ब्रॉन्क्स ज़ू की एक 4-वर्षीय बाघिन (नादिया) कोविड-19 पॉज़िटिव निकली है। गौरतलब है कि न्यूयॉर्क अत्यधिक संक्रमित क्षेत्र है।

यह मलायन बाघिन, बिल्ली कुल के छः अन्य साथियों (जिनमें नादिया की एक बहन, दो अमूर बाघ और तीन अफ्रीकी शेर शामिल हैं) के साथ सूखी खांसी से पीड़ित थी। हालांकि इन अन्य प्राणियों की जांच नहीं की गई है किंतु ज़ू के अधिकारी मानकर चल रहे हैं कि ये सब SARS-CoV-2 से संक्रमित हैं जो कोविड-19 का कारण है।

दरअसल, इस बाघिन की जांच ऐहतियात के तौर पर की गई थी और अधिकारियों की कहना है कि उन्हें इस बाघिन के अध्ययन से जो भी जानकारी मिलेगी वह कोरोनावायरस से हमारी विश्वव्यापी लड़ाई में मददगार ही होगी। वाइल्डलाइफ कंज़र्वेशन सोसायटी का मत है कि चिड़ियाघर का एक कर्मचारी कोविड-19 से पीड़ित था और संभवतः उसने ही इन बिल्लियों को संक्रमित किया है। इसके बाद से सभी कर्मचारियों के लिए सुरक्षा के उपाय लागू कर दिए गए हैं।

यह देखा गया है कि संक्रमित जानवरों की भूख कम हुई है लेकिन चिड़ियाघर के अनुसार उनकी हालत ठीक है। चिड़ियाघर के पशु चिकित्सक इन बाघ-शेरों की देखभाल व उपचार में लगे हैं।

एक अच्छी बात यह है कि बिल्ली कुल के अन्य प्राणियों में फिलहाल कोविड-19 के लक्षण नहीं दिखे हैं।

यह देखा जा चुका है कि पालतू बिल्लियां संक्रमित हुई हैं। पता चला है कि उनकी श्वसन कोशिकाओं की सतह पर लगभग वैसे ही ग्राही पाए जाते हैं, जैसे मनुष्य की कोशिकाओं पर होते हैं, जो वायरस को कोशिका में प्रवेश करने में मदद करते हैं। वैसे अभी इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि बिल्लियां यह वायरस मनुष्यों में फैला सकती हैं। बहरहाल, न्यूयॉर्क के विभिन्न चिड़ियाघरों को बंद कर दिया गया है। ***(स्रोत फीचर्स)***

लंबे जीवन का रहस्य

लोगों से उनकी लंबी उम्र का राज़ पूछो तो वे इसका श्रेय अपने खान-पान, व्यायाम, नृत्य, दिमागी कसरत जैसी तमाम गतिविधियों को देते हैं। 109 वर्षीय जेसी गैलन से जब उनकी लंबी आयु का राज़ पूछा गया तो उन्होंने एक जवाब यह भी दिया कि वे पुरुषों से दूर रहती हैं। लेकिन किसी के मन में यह ख्याल नहीं आता कि इसमें गुणसूत्र (क्रोमोसोम) की भी भूमिका हो सकती है। इसी संदर्भ में हाल ही में *बायोलॉजी लेटर्स* में प्रकाशित एक अध्ययन बताता है कि असमान लैंगिक गुणसूत्र वाले जीवों की तुलना में समान लैंगिक गुणसूत्र वाले जीव अधिक जीते हैं।

अधिकतर जानवरों में नर और मादा का निर्धारण लैंगिक गुणसूत्रों से होता है। स्तनधारियों में, मादाओं में दोनों लैंगिक गुणसूत्र समान (XX) होते हैं जबकि नर में असमान (XY) होते हैं। पक्षियों में नर में लैंगिक गुणसूत्र समान (ZZ) होते हैं जबकि मादा में असमान (ZW) होते हैं। नर ऑक्टोपस जैसे कुछ जीवों में एक ही लैंगिक गुणसूत्र होता है।

युनिवर्सिटी ऑफ न्यू साउथ वेल्स के इकॉलॉजिस्ट ज़ो ज़ाइरोकोस्टास और उनके साथी जानना चाहते थे कि क्या असमान लैंगिक गुणसूत्र (जैसे XY) वाले जीवों में आनुवंशिक उत्परिवर्तनों का खतरा अधिक होता है, जिसके कारण उनका जीवन काल छोटा हो जाता है? शोधकर्ताओं ने वैज्ञानिक शोध पत्रों, किताबों और ऑनलाइन डैटाबेस को खंगाला और लैंगिक गुणसूत्र और आयु सम्बंधी डैटा निकाला। उन्होंने 99 कुल, 38 गण और 8 वर्गों की 229 प्रजातियों के नर और मादाओं के जीवन काल की तुलना की। उन्होंने पाया कि किसी भी प्रजाति में समान लैंगिक गुणसूत्र वाले लिंग का जीवन काल 17.6 प्रतिशत तक अधिक होता है। जीवन काल का यह पैटर्न मनुष्यों, जंगली जानवरों और पालतू जानवरों में दिखाई दिया।

शोधकर्ताओं का कहना है कि लिंगों के बीच जीवन काल का यह अंतर विभिन्न प्रजातियों में अलग-अलग होता है। जैसे जर्मन कॉकरोच (*Blattella germanica* प्रजाति) के नर (सिर्फ X) की तुलना में मादा (XX) 77 प्रतिशत अधिक जीवित रहती है। यह अंतर इस बात पर भी निर्भर करता है कि समान लैंगिक गुणसूत्र वाला जीव नर है या मादा। अध्ययन में उन्होंने पाया कि समान लैंगिक गुणसूत्र वाली मादा (स्तनधारी, सरीसृप, कीट और मछलियां) अपनी प्रजाति के नर की तुलना में 20.9 प्रतिशत अधिक समय तक जीवित रहती हैं। दूसरी ओर, समान लैंगिक गुणसूत्र वाले नर (पक्षी और तितलियां) अपनी प्रजाति की मादाओं की तुलना में सिर्फ 7 प्रतिशत ही अधिक जीते हैं।

शोधकर्ताओं का कहना है कि समान लैंगिक गुणसूत्र वाले नर और मादा के जीवन काल में फर्क देखकर लगता है कि दीर्घायु को लैंगिक गुणसूत्र के अलावा अन्य कारक भी प्रभावित करते हैं। इनमें से एक कारक हो सकता है प्रजनन-साथी चयन का दबाव। मादाओं को रिझाने के लिए कुछ प्रजातियों के नर की शारीरिक बनावट और व्यवहार आकर्षक होते हैं, जिसके लिए उन्हें काफी ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है जिसका खामियाज़ा उनके स्वास्थ्य को भुगतना पड़ता है जिससे उनकी मृत्यु जल्दी हो जाती है।

आगे शोध से यह समझने में मदद मिलेगी कि लैंगिक गुणसूत्र जीवन काल को कैसे प्रभावित करते हैं। जैसे क्या एक लैंगिक-गुणसूत्र का छोटा आकार नर और मादाओं की आयु में अंतर के लिए ज़िम्मेदार है। ***(स्रोत फीचर्स)***

बुढ़ापे की जड़ में एक एंज़ाइम

एस. अनंतनारायणन

परिवर्तन और बूढ़े होने की प्रक्रियाएं ही हैं जो हमें समय बीतने का एहसास कराती हैं। और समय बीतने का एहसास न हो तो मानव विकास, कला व सभ्यता काफी अलग होंगे।

प्रोसीडिंग्स ऑफ दी नेशनल एकेडमी ऑफ साइन्सेज़ (*पीएनएएस*) में ए एंड एम विश्वविद्यालय, एरिज़ोना स्टेट विश्वविद्यालय, चाइना कृषि विश्वविद्यालय और स्कोल्वो विज्ञान व टेक्नॉलॉजी संस्थान के शोधकर्ताओं के एक शोध पत्र में सजीवों में बुढ़ाने की प्रक्रिया की क्रियाविधि की एक समझ एक कदम आगे बढ़ी है।

इस कदम का सम्बंध कोशिकाओं में उपस्थित डीएनए के एक अंश से है, जो कोशिकाओं के विभाजन और नवीनीकरण में भूमिका निभाता है। यह घटक सबसे पहले ठहरे हुए पानी की एक शैवाल में खोजा गया था और आगे चलकर पता चला कि यह अधिकांश सजीवों के डीएनए में पाया जाता है। *पीएनएएस* के शोध पत्र में टीम ने खुलासा किया है कि यह घटक पौधों में कैसे काम करता है। धरती पर सबसे लंबी उम्र पौधे ही पाते हैं, इसलिए इनमें इस घटक की समझ को आगे चलकर अन्य जीवों और मनुष्यों पर भी लागू किया जा सकेगा।

सजीवों में वृद्धि और प्रजनन दरअसल कोशिका विभाजन के ज़रिए होते हैं। विभाजन के दौरान कोई भी कोशिका दो कोशिकाओं में बंट जाती है, जो मूल कोशिका के समान होती हैं। यह प्रतिलिपिकरण कोशिका के केंद्रक में उपस्थित डीएनए की बदौलत होता है। डीएनए एक लंबा अणु होता है जिसमें कोशिका के निर्माण का ब्लूप्रिंट भी होता है और स्वयं की प्रतिलिपि बनाने का साधन भी होता है। डीएनए की प्रतिलिपि इसलिए बन पाती है क्योंकि यह दो पूरक शृंखलाओं से मिलकर बना होता है। जब ये दोनों शृंखलाएं अलग-अलग होती हैं, तो दोनों में क्षमता होती है कि वे अपने परिवेश से पदार्थ लेकर दूसरी शृंखला बना सकती हैं।

लेकिन इसमें एक समस्या है। प्रतिलिपिकरण के दौरान ये शृंखलाएं लंबी हो सकती हैं या किसी अन्य डीएनए से जुड़ सकती हैं। ऐसा होने पर जो अणु बनेगा वह अकार्यक्षम होगा और इस तरह से बनने वाली कोशिकाएं नाकाम साबित होंगी। लिहाज़ा डीएनए में एक ऐसी व्यवस्था बनी है कि ऐसी गड़बड़ियों को रोका जा सके। प्रत्येक डीएनए के सिरों पर कुछ ऐसी रासायनिक रचना होती है जो बताती है कि वह उस अणु का अंतिम हिस्सा है। और डीएनए में यह क्षमता होती है कि वह अपने सिरों पर यह व्यवस्था बना सके।

सिरे पर स्थित इस व्यवस्था को टेलामेयर कहते हैं। यह वास्तव में उन्हीं इकाइयों से बना होता है जो डीएनए को भी बनाती हैं। और यह टेलोमेयर एक एंज़ाइम की मदद से बनाया जाता है जिसे टेलोमरेज़ कहते हैं। कोशिकाओं में किसी भी रासायनिक क्रिया के संपादन हेतु एंज़ाइम पाए जाते हैं।

बुढ़ाने की प्रक्रिया की प्रकृति को समझने की दिशा में शुरुआती खोज यह हुई थी कि कोई भी कोशिका कितनी बार विभाजित हो सकती है, इसकी एक सीमा होती है। आगे चलकर इसका कारण यह पता चला कि हर बार विभाजन के समय जो नई कोशिकाएं बनती हैं, उनका डीएनए मूल कोशिका के समान नहीं होता। हर विभाजन के बाद टेलोमेयर थोड़ा छोटा हो जाता है। एक संख्या में विभाजन के बाद टेलोमेयर निष्प्रभावी हो जाता है और कोशिका विभाजन रुक जाता है। लिहाज़ा, वृद्धि धीमी पड़ जाती है, सजीव का कामकाज ठप होने लगता है और तब कहा जाता है कि वह जीव बुढ़ा रहा है।

उपरोक्त खोज 1980 में एलिज़ाबेथ ब्लैकबर्न, कैरोल ग्राइडर और जैक ज़ोस्ताक ने की थी और इसके लिए उन्हें 2009 में नोबेल पुरस्कार से नवाज़ा गया था। अच्छी बात यह थी कि इन शोधकर्ताओं ने एक एंज़ाइम (टेलोमरेज़) की खोज भी की थी जिसमें टेलोमेयर के विघटन को रोकने या धीमा करने और यहां तक कि उसे पलटने की भी क्षमता होती है। टेलोमरेज़ में वह सांचा मौजूद होता है जो आसपास के परिवेश से पदार्थों को जोड़कर डीएनए का टेलोमरेज़ वाला खंड बना सकता है। इसके अलावा टेलोमरेज़ में यह क्षमता भी होती है कि वह पूरे डीएनए की ऐसी प्रतिलिपि बनवा सकता है, जिसमें अंतिम सिरा नदारद न हो। इस

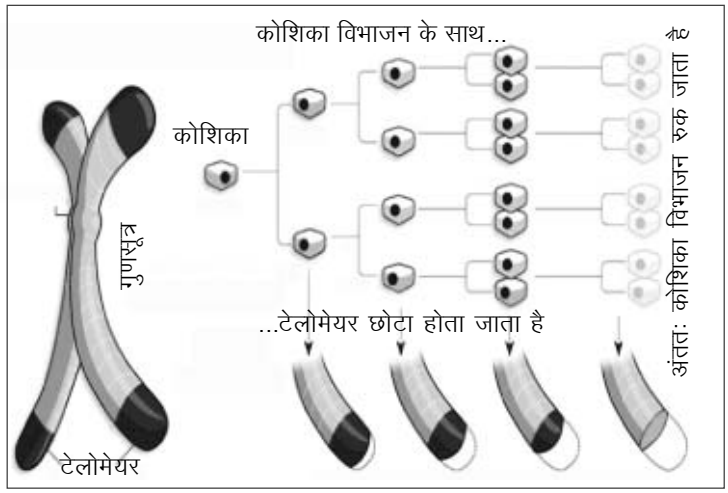

तरह से टेलोमरेज़ विभाजित होती कोशिकाओं को तंदुरुस्त रख सकता है।

टेलोमेयर और टेलोमरेज़ की क्रिया कोशिका मृत्यु और कोशिकाओं की वृद्धि में निर्णायक महत्व रखती है। वैसे किसी भी जीव की अधिकांश कोशिकाएं बहुत बार विभाजित नहीं होतीं, इसलिए अधिकांश कोशिकाओं को टेलोमेयर के घिसाव या संकुचन से कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन स्टेम कोशिकाओं की बात अलग है। ये वे कोशिकाएं होती हैं जो क्षति या बीमारी की वजह से नष्ट होने वाली कोशिकाओं की प्रतिपूर्ति करती हैं। उम्र बढ़ने के साथ ये स्टेम कोशिकाएं कम कारगर रह जाती हैं और जीव चोट या बीमारी से उबरने में असमर्थ होता जाता है। दरअसल, कई सारी ऐसी बीमारियां है जो सीधे-सीधे टेलोमरेज़ की गड़बड़ी की वजह से होती हैं। जैसे एनीमिया, त्वचा व श्वसन सम्बंधी रोग।

इसके आधार पर शायद ऐसा लगेगा कि टेलोमरेज़ को प्रोत्साहित करने के तरीके खोजकर हम वृद्धावस्था से निपट सकते हैं। लेकिन गौरतलब है कि टेलोमरेज़ का बढ़ा हुआ स्तर कैंसर कोशिकाओं को अनियंत्रित विभाजन में मदद कर नई समस्याएं पैदा कर सकता है। अतः टेलोमरेज़ की क्रियाविधि को समझना आवश्यक है ताकि हम ऐसे उपचार विकसित कर सकें जिनमें ऐसे साइड प्रभाव न हों।

पीएनएएस के शोध पत्र के लेखकों ने बताया है कि वैसे तो टेलोमरेज़ की भूमिका सारे जीवों में एक-सी होती है, लेकिन यह सही नहीं है कि उसका कामकाजी हिस्सा भी सारे सजीवों में एक जैसा हो। कामकाजी हिस्से से आशय टेलोमरेज़ के उस हिस्से से है जो कोशिका विभाजन के दौरान डीएनए को टेलोमेयर के संश्लेषण में मदद देता है। इस घटक को टेलोमरेज़ आरएनए (या संक्षेप में टीआर) कहते हैं। शोध पत्र में स्पष्ट किया गया है कि टीआर की प्रकृति को समझना काफी चुनौतीपूर्ण रहा है क्योंकि विभिन्न प्रजातियों में टीआर की प्रकृति व संरचना बहुत अलग-अलग होती है।

टीम ने अपना कार्य *एरेबिडॉप्सिस थैलियाना* नामक पौधे के टेलोमरेज़ के साथ प्रयोग और विश्लेषण के आधार पर किया। *एरेबिडॉप्सिस थैलियाना* पादप वैज्ञानिकों के लिए पसंदीदा मॉडल पौधा रहा है। शोध पत्र के मुताबिक अध्ययन से पता चला कि टीआर अणु में विविधता के बावजूद इस अणु के अंदर दो ऐसी विशिष्ट रचनाएं हैं जो विभिन्न प्रजातियों में एक जैसी बनी रही हैं। पिछले अध्ययनों से आगे बढ़कर टीम ने वर्तमान अध्ययन में *एरेबिडॉप्सिस थैलियाना* में टीआर का एक प्रकार पहचाना गया है जो संभवतः टेलोमेयर के रख-रखाव में मदद करता है और टेलोमेयर की एक उप-इकाई के साथ जुड़कर टेलोमरेज़ की गतिविधि का पुनर्गठन करता है।

अध्ययन में पादप कोशिका, तालाब में पाई जाने वाली स्कम और अकशेरुकी जंतुओं के टीआर के तुलनात्मक लक्षण भी उजागर किए हैं। इनसे जैव विकास के उस मार्ग का भान होता है जिसे एक-कोशिकीय प्राणियों से लेकर वनस्पतियों और ज़्यादा जटिल जीवों तक के विकास के दौरान अपनाया गया है। इस मार्ग को समझकर हम यह समझ पाएंगे कि टेलोमेयर के काम को किस तरह बढ़ावा दिया जा सकता है या रोका जा सकता है।

टेलोमेयर घिसाव की प्रक्रिया अनियंत्रित कोशिका विभाजन को रोकने के लिए अनिवार्य है। इसी वजह से जीव बूढ़े होते हैं और मृत्यु को प्राप्त होते हैं। इसीलिए जंतुओं की आयु चंद दशकों तक सीमित होती है। दूसरी ओर, ब्रिसलकोन चीड़ और यू वृक्ष हज़ारों साल जीवित रहते हैं। यदि हम यह समझ पाएं कि पादप जगत बुढ़ाने की प्रक्रिया से कैसे निपटता है, तो शायद हमें मनुष्यों की आयु बढ़ाने या कम से कम जीवन की गुणवत्ता बेहतर बनाने का रास्ता मिल जाए। ***(स्रोत फीचर्स)***

क्या तनाव से बाल सफेद हो जाते हैं?

ऐसा कहते हैं कि तनाव के कारण लोगों के बालों का रंग उड़ जाता है, बाल सफेद हो जाते हैं। कहा जाता है कि मुमताज़ महल की मृत्यु के बाद शाहजहां के बाल एकाध हफ्ते में ही सफेद हो गए थे। इसी तरह फ्रांस की रानी मैरी एंतोनिएट के बाल उस रात सफेद हो गए थे जिसके अगले दिन उनका सिरकलम किया जाना था। तो क्या ऐसा सच में संभव है?

हारवर्ड स्टेम सेल रिसर्च इंस्टीट्यूट के शोधकर्ता मामले की तह तक पहुंचना चाहते थे। बात को समझने के लिए या-चिए ह्सू और उनके साथियों ने अपने सारे प्रयोग चूहों पर किए हैं लेकिन उन्हें लगता है कि परिणाम मनुष्यों पर लागू होंगे।

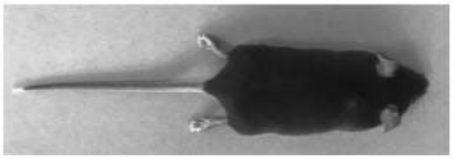

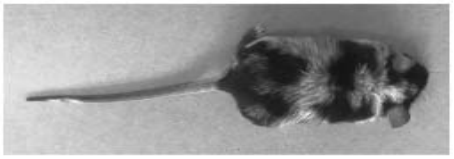

सबसे पहले उन्होंने उन स्टेम कोशिकाओं पर ध्यान केंद्रित किया जो मेलेनोसाइट (मेलेनीन रंजक युक्त कोशिका) का निर्माण करती हैं। ये मेलेनोसाइट प्रत्येक बाल में मेलेनीन पहुंचाती हैं जिसका रंग काला होता है। मेलेनोसाइट बनाने वाली स्टेम कोशिकाओं पर ध्यान जाना स्वाभाविक था क्योंकि मेलेनोसाइट स्टेम कोशिकाओं की तादाद में फर्क पड़ने से बालों के रंग पर असर पड़ता है।

पहले तो शोधकर्ताओं ने इन चूहों को उनके डील-डौल के हिसाब से तनाव दिया। जैसे उनके पिंजड़ों को झुकाकर रखा गया या उनके सोने की जगह को गीला रखा गया या रात भर लाइटें चालू रखी गईं। शोधकर्ताओं ने देखा कि तनाव के कारण वास्तव में चूहों के बाल सफेद हो जाते हैं।

विचार बना कि शायद इन चूहों में तनाव बढ़ने पर उनकी प्रतिरक्षा तंत्र की कोशिकाएं मेलेनोसाइट स्टेम कोशिकाओं पर आक्रमण कर रही हैं, जिसकी वजह से इन स्टेम कोशिकाओं की संख्या कम होने लगी है। लेकिन जिन चूहों में प्रतिरक्षा कोशिकाएं नहीं थीं, उनके भी बाल सफेद हुए। निष्कर्षः तनाव के कारण बाल सफेद होने में प्रतिरक्षी कोशिकाओं का हाथ नहीं है।

अगला विचार आया कि संभवतः इसमें कॉर्टिसोल की भूमिका होगी। कॉर्टिसोल वह प्रमुख हारमोन है जो तनाव के समय बनता है। यह बालों पर भी असर डालता है। लेकिन प्रयोगों में देखा गया कि बाल सफेद उन चूहों में भी हुए जिनकी कॉर्टिसोल बनाने वाली ग्रंथि निकाल दी गई थी। तो अब क्या?

इसके बाद उनका ध्यान अनुकंपी तंत्रिका तंत्र पर गया। यही तंत्रिका तंत्र हारमोन के प्रभाव से तनाव जनित व्यवहारों और 'लड़ो या भागो' प्रतिक्रिया को अंजाम देता है। इन अनुकंपी तंत्रिकाओं के सिरे हर रोम के आसपास लिपटे होते हैं। जब टीम ने चूहों में इन कनेक्शन को काट दिया तो जल्दी ही चूहों के बाल सफेद हो गए।

अभी यह स्पष्ट नहीं है कि क्या उम्र के साथ बाल सफेद होने की प्रक्रिया में भी अनुकंपी तंत्रिकाओं की भूमिका है लेकिन शोधकर्ताओं का ख्याल है कि सफेद बालों की समस्या के संदर्भ में कुछ तो आशा जगी है। ***(स्रोत फीचर्स)***

वर्ग पहेली 187 का हल

आ	का	श	गं	गा		घा	त
लिं		ब		मा	र	को	नी
द	ह	न			य		घु
		म	ल		त	ल	छ	ट
उ			सि	या	र		ना
म	री	चि	का		ल	ता	
स		म			प	श्चि	म
	गै	नी	मी	ड		मा		ग
को	स			ग	ग	न	या	न

कृत्रिम बुद्धि से एंटीबायोटिक की खोज

प्रदीप

फ्लेमिंग ने 1928 में पेनिसिलीन एंटीबायोटिक की खोज करके संक्रामक रोगों से लड़ने का रास्ता दिखाया था। एंटीबायोटिक दवाएं संक्रामक रोगों के उपचार में रामबाण साबित हुईं। लेकिन अब ये जीवनरक्षक दवाएं सूक्ष्मजीव प्रतिरोध के चलते बेअसर हो रही हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक, पिछले कुछ दशकों में इनका बहुत दुरुपयोग और बेजा इस्तेमाल हुआ है।

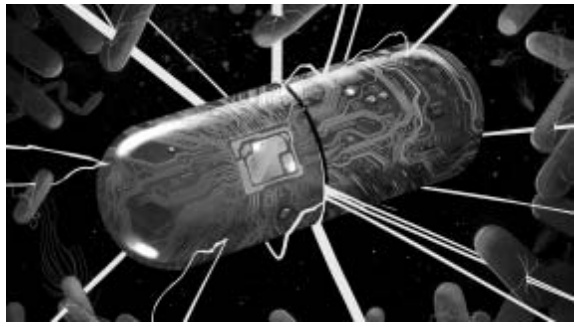

एंटीबायोटिक दवाओं के बैक्टीरिया पर घटते असर के मद्देनज़र पिछले कुछ वर्षों से वैज्ञानिक कृत्रिम बुद्धि (एआई) की मदद से नए किस्म की दवाओं की खोज करने की कोशिश कर रहे हैं ताकि प्रतिरोधी बैक्टीरिया का खात्मा किया जा सके। हाल ही में इस दिशा में एक बड़ी कामयाबी हासिल हुई है। अमेरिका के मैसाचूसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी (एमआईटी) के वैज्ञानिकों ने एआई की मदद से एक नया और शक्तिशाली एंटीबायोटिक तैयार किया है। शोधकर्ताओं का दावा है कि इस एंटीबायोटिक से तमाम घातक बीमारियां पैदा करने वाले बैक्टीरिया को भी मारा जा सकता है। इस एंटीबायोटिक से उन सभी बैक्टीरिया का खात्मा किया जा सकता है जो ज्ञात एंटीबायोटिक दवाओं के प्रतिरोधी हो चुके हैं।

इस नए एंटीबायोटिक को हेलिसिन नाम दिया गया है। इसका परीक्षण कई बैक्टीरिया पर किया गया है। परीक्षण में हेलिसिन इन सभी जीवाणुओं को मारने में सफल रहा है। *एसीनेटोबैक्टर बॉमनी* एक ऐसा जीवाणु है जिस पर ज़्यादातर एंटीबायोटिक दवाएं बेअसर साबित होती हैं लेकिन हेलिसिन 24 घंटों में इस जीवाणु के संक्रमण को कम कर देता है। पूर्व अनुसंधान में यह देखा गया था कि *ई. कोली* नामक बैक्टीरिया एक से तीन दिन के भीतर ही प्रचलित एंटीबायोटिक सिप्रोफ्लॉक्सेसिन का प्रतिरोधी होने लगता है और 30 दिन में सिप्रोफ्लॉक्सेसिन बिलकुल बेअसर हो जाता है। हेलिसिन *ई. कोली* बैक्टीरिया को भी खत्म कर सकता है। एमआईटी की रिसर्च टीम के जेम्स कॉलिन का कहना है कि हेलिसिन का इस्तेमाल फिलहाल चूहों पर किया गया है। जल्दी ही इंसानों पर परीक्षण किए जाएंगे।

कॉलिन का कहना है कि वे एआई की मदद से ऐसा प्लेटफॉर्म तैयार कर रहे हैं जिससे नए किस्म की दवा की खोज हो सके। शोधकर्ताओं का कहना है कि इंसान के मुकाबले एआई की मदद से कम समय में और बेहतर शोध किया जा सकता है। इससे चंद दिनों में 10 करोड़ से ज़्यादा रसायनों की जांच हो सकती है। वैज्ञानिक एआई का इस्तेमाल करके दवाओं की कीमत कम करने के अलावा ऐसे अणु तैयार कर रहे हैं जिनसे जटिल बीमारियों का इलाज मुमकिन हो सके।

एमआईटी के वैज्ञानिकों ने एआई की मदद से 800 प्राकृतिक उत्पादों का एक सेट बनाया है। 6000 यौगिकों में से एक ऐसे अणु की पहचान करने में कामयाबी मिली जो बैक्टीरिया का सफाया करने में कारगर रहा।

पिछले कुछ दशकों में बहुत कम नए एंटीबायोटिक्स विकसित किए गए हैं और ये प्रायः मौजूदा दवाओं से थोड़े ही अलग हैं। दूसरी ओर, बैक्टीरिया कहीं तेज़ी से इनके खिलाफ प्रतिरोधी हो रहे हैं। ऐसे में हेलिसिन एक नई उम्मीद जगाता है। वैज्ञानिक हेलिसिन के आधार पर बेहतर एंटीबायोटिक्स दवाएं विकसित करने में जुटे हैं, और इस बात का भी ध्यान रख रहे हैं कि इनसे पाचन तंत्र में मौजूद लाभकारी बैक्टीरिया को नुकसान न पहुंचे। ***(स्रोत फीचर्स)***

अस्पतालों में कला और स्वास्थ्य

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

कई अस्पताल, खास तौर से निजी व कार्पोरेट अस्पताल, अपने प्रवेश कक्ष और मरीज़ों के प्रतीक्षा कक्षों में आकर्षक तस्वीरें और कलाकृतियां रखते हैं। अधिकांश लोग, और वास्तव में कई अस्पताल मालिक भी सोचते हैं कि यह उनके कलाप्रेम का ढिंढोरा पीटने जैसा है। इसके विपरीत, अधिकांश सार्वजनिक या सरकारी अस्पताल ऐसा कुछ नहीं करते और अपनी दीवारों को सूना छोड़ देते हैं या उन पर तमाम सूचनाएं चस्पा कर देते हैं। इन अस्पतालों के कमरे और गलियारे भद्दे लगते हैं। यह बात देश भर के अत्यंत प्रतिष्ठित चिकित्सा संस्थानों पर भी लागू होती है। इसे देखते हुए, यह बात आपको (और शायद इन निजी अस्पतालों के मालिकों को भी) आश्चर्यजनक लगेगी कि अस्पतालों में मरीज़ों के प्रतीक्षा कक्षों और वार्ड्स में कलाकृतियों का प्रदर्शन मरीज़ों, डॉक्टरों, नर्सों और देखभाल करने वाले लोगों के लिए अच्छा होता है।

डेनमार्क के शोधकर्ताओं एस. एल. नीलसन व साथियों द्वारा *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्वालिटेटिव स्टडीज़ ऑन हेल्थ एंड वेल-बीइंग* में प्रकाशित पर्चे 'मरीज़ अस्पतालों में कला को कैसे महसूस करते हैं और उसका उपयोग करते है?' में बताया गया था कि कैसे इससे मरीज़ों को सुलभता और देख-रेख का एहसास होता है। इस रिपोर्ट को कई जगह उद्धरित किया जाता है।

शोधकर्ताओं ने एक साझा देखभाल कक्ष में रखे गए मरीज़ों का कई सप्ताह तक अध्ययन किया था। पहले सप्ताह में कक्ष की दीवारें खाली और सूनी थीं। हर मरीज़ अपनी ही चिकित्सकीय हालत (तकलीफ) में डूबा था। मरीज़ कक्ष में किसी और से बात भी नहीं करते थे।

आठवें दिन देखभाल कक्ष की दीवारों पर कलाकृतियां - पेंटिंग, तस्वीरें, फोटोग्राफ्स - लगा दी गईं। अधिकांश मरीज़ों ने इन्हें देखा और इनका अध्ययन किया। पहले की आत्म-केंद्रिकता से उनका ध्यान बंटा और वे इन चीज़ों का विश्लेषण करने लगे और अपने ढंग से उनकी व्याख्या करने लगे। वे कक्ष के अन्य लोगों से बातचीत करने लगे और दोस्तियां बनाईं, गैर-चिकित्सकीय विषयों पर चर्चा करने लगे, नुक्ताचीनी करने लगे और मेलजोल बढ़ा। यह भी देखा गया कि मरीज़ नर्सों, डॉक्टरों और देखभाल करने वाले अन्य लोगों की बातें ज़्यादा ध्यान से सुनने लगे और उनका उपचार बेहतर होता गया।

शोधकर्ताओं का निष्कर्ष है कि कला एक ऐसा माहौल पैदा करती है जहां मरीज़ सुरक्षित महसूस करते हैं, मेलजोल बढ़ाते हैं और अस्पताल की चारदीवारी से बाहर की दुनिया से जुड़ते हैं। यह उनकी पहचान को भी सहारा देता है। कुल मिलाकर अस्पताल में दृश्य कला स्वास्थ्य सम्बंधी परिणामों में सुधार करती है। अपेक्षा तो यह की जानी चाहिए कि यह बात खास तौर से आईसीयू में बंद मरीज़ों पर ज़्यादा लागू होगी क्योंकि वहां तो पूरा परिवेश चिकित्सा उपकरणों से भरा होता है।

देखा जाए, तो यह अध्ययन युरोपीय समाज में किया गया था। क्या इसके परिणाम भारत के सार्वजनिक और सरकारी

अस्पतालों के लिए भी सही होंगे? कोई कारण नहीं कि ऐसा नहीं होगा लेकिन इसका नियोजन व रणनीति स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप होनी चाहिए। लोग तो लोग होते हैं: वे बातचीत करना चाहते हैं, वे चाहते हैं कि उन पर ध्यान दिया जाए, सिर्फ चिकित्सकीय ध्यान नहीं बल्कि व्यक्तियों के रूप में ध्यान दिया जाए।

इसके लिए डिज़ाइनर्स, समाज वैज्ञानिकों और संवेदनशील कलाकारों को डॉक्टरों के साथ मिलकर उपलब्ध जगह के आधार पर कलाकृतियों का चयन करना होगा। मरीज़ों के लिए उपलब्ध जगह और भीड़भाड़, काम के बोझ से दबे डॉक्टर्स और देखभालकर्ता, स्थानीय संस्कृति तथा अन्य कारकों का ध्यान रखना होगा। लेकिन यह किया जा सकता है। और यह किया जाना चाहिए क्योंकि जैसा कि ऊपर कहा गया था, कला स्वास्थ्य सम्बंधी परिणामों में योगदान देती है और इसे स्वास्थ्य देखभाल का ही एक विस्तार माना जाना चाहिए।

सवाल यह है कि क्या अस्पताल में कला डॉक्टरों और नर्सों की मदद करती है? कलाकृतियों को देखकर वे क्या सीख सकते हैं? क्या इससे उन्हें बेहतर पेशेवर बनने में मदद मिलती है? दरअसल ऐसा ही है। एन स्लोअन डेवलिन की पुस्तक *Transforming the Doctor's office: Principles from Evidence-Based Design* (डॉक्टर के दफ्तर में तबदीली: प्रमाण-आधारित डिज़ाइन से कुछ सिद्धांत) में कुछ सुराग मिलते हैं। और डॉक्टर रॉबर्ट ग्लैटर का आलेख *Can studying art help medical students become better doctors?* (क्या कला का अध्ययन चिकित्सा छात्रों को बेहतर डॉक्टर बनने में मदद करता है?) इस बात के पक्ष में पुख्ता तर्क पेश करता है कि चिकित्सा विद्यार्थियों के लिए ग्रे की एनाटॉमी से आगे जाकर कला का पाठ्यक्रम रखा जाना चाहिए। और वास्तव में कुछ चिकित्सा अध्ययन शालाओं में ऐसा कोर्स जोड़ा गया है और नौजवान छात्रों ने इसे पसंद भी किया है और उन्हें लगता है कि इससे उनकी नैदानिक कुशलता बेहतर हुई है। एक छात्र का कहना था: "अब तक मैं चित्र के मध्य भाग को मुख्य हिस्सा मानकर चल रहा था, लेकिन मुझे समझ में आया है कि हाशियों पर जानकारी का खजाना है।"

तो, हमारे मेडिकल कॉलेज इसे आज़मा सकते हैं और समय-समय पर कलाकारों को आमंत्रित करके उनसे अपनी कला के बारे में बात करने को कह सकते हैं और छात्रों से उनकी प्रतिक्रिया बताने को कहा जा सकता है। समय-समय पर ऐसे सम्मेलन, चाहे वे पाठ्यक्रम का हिस्सा न हों, दिमाग को विस्तार देंगे और मशीनों से मिलने वाले चित्रों की व्याख्या करने और उनसे और अधिक जानकारी प्राप्त करने में मददगार होंगे। हैदराबाद के एक निजी मेडिकल कॉलेज ने अपने चिकित्सा व शोध सदस्यों तथा डॉक्टरों के लिए इस पर अमल भी किया है। कॉलेज ने मरीज़ों के प्रतीक्षा कक्ष में, हर मंज़िल की दीवारों पर, बच्चों के देखभाल केंद्र में, दृष्टि सहायता चिकित्सालयों में पेंटिंग्स व अन्य कलाकृतियां रखी हैं। इस प्रकार से उन्होंने डेनमार्क के समूह द्वारा 2017 में सुझाए गए उपायों को अपनाया है। अस्पताल ने एक पूरी मंज़िल का बड़ा हिस्सा तो कला दीर्घा को समर्पित कर दिया है यहां कलाकारों, संगीतज्ञों, लेखकों, गैर-सरकारी संगठनों और अन्य विद्वानों को व्याख्यान देने तथा डॉक्टरों व वैज्ञानिकों के अलावा आम नागरिकों से भी बातचीत करने हेतु आमंत्रित किया जाता है। ***(स्रोत फीचर्स)***

कोशिकाओं की खुदकुशी - एपोप्टोसिस

डॉ. विपुल कीर्ति शर्मा

वर्षा ऋतु में प्रकृति सजीव हो उठती है। कीट-पतंगे, मकड़ियां और नाना प्रकार के जीव जंतु दिखाई पड़ने लगते हैं। मेंढकों का भी यह प्रजनन काल होता है। नर मेंढक ज़ोर-ज़ोर से टर्रा कर मादा को आमंत्रित करते हैं। और मादा भी उनके प्रणय निवेदन को स्वीकार कर खिंची चली आती है। प्रजनन के दौरान मादा मेंढक पानी में अंडे देती है और नर अपने शुक्राणु उनपर छिड़क देता है। अंडों से टैडपोल बनता है और उसके बाद मेंढक। संरचना और स्वभाव में टैडपोल मेंढक से काफी भिन्न होते हैं। टैडपोल पानी में रहते हैं, गलफड़ों से श्वसन करते हैं, शाकाहारी होते हैं और काई कुतर कर खाते हैं। इनकी आंत बहुत लंबी होती है और तैरने के लिए इनमें पूंछ भी होती है। दूसरी ओर, मेंढक पानी और ज़मीन दोनों जगह रहते हैं। त्वचा और फेफड़ों से श्वसन करते हैं। मांसाहारी होते हैं, छोटे-मोटे जीव जंतुओं का शिकार करते हैं। इनकी आंत भी छोटी होती है, पूंछ नहीं होती लेकिन चलने और तैरने के लिए इनके पास बढ़िया अनुकूलित टांगें होती हैं।

जब टैडपोल से वयस्क मेंढक बनता है तो उसकी पूंछ और गलफड़े कहां चले जाते हैं? ये टूट कर गिरते नहीं बल्कि अवशोषित कर लिए जाते हैं।

टैडपोल से मेंढक बनने जैसा ही कुछ-कुछ तितली के जीवन में भी घटता है। इनके अंडों से कैटरपिलर (इल्ली) निकलते हैं। कैटरपिलर खूब फूल-पत्तियां खाते हैं। उसके बाद वे एक प्यूपा (शंखी) में बदल जाते हैं। और फिर एक दिन प्यूपा में से तितली निकलती है। तितली कैटरपिलर से बिल्कुल अलग होती है। जहां लंबे कैटरपिलर में चलने के लिए अनेक टांगों जैसी रचनाएं होती हैं, पत्तियों को कुतर-कुतर कर खाने के लिए मज़बूत जबड़े होते हैं वहीं तितलियों में फूल का रस पीने के लिए लंबी स्ट्रॉ के समान सूंड (प्रोबोसिस) नाम की नली होती है, चलने के लिए 3 जोड़ी टांगें और उड़ने के लिए पंख होते हैं।

टैडपोल और कैटरपिलर दोनों में ही अनेक अंग वयस्क होने पर बदल जाते हैं। पुराने अंग नष्ट होकर अवशोषित हो जाते हैं और नए अंगों का निर्माण होता है। अर्थात प्रत्येक प्राणी में विकास के दौरान अनेक पुरानी और टूटी-फूटी कोशिकाएं बेकार हो जाने पर निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार नष्ट हो जाती हैं। कोशिका के नष्ट होने की इस प्रक्रिया को एपोप्टोसिस या तयशुदा कोशिका मृत्यु (प्रोग्राम्ड सेल डेथ) कहते हैं।

हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका की निश्चित आयु होती है। जैसे रक्त में पाई जाने वाली लाल रक्त कोशिकाएं मात्र 120 दिन जीवित रहती हैं। इनकी भरपाई के लिए कोशिका विभाजन द्वारा निरंतर नई कोशिकाएं बनती रहती हैं। प्रायः कोशिकाओं की मृत्यु चोट, संक्रमण, विकिरण या रसायनों आदि के कारण होती हैं। यह आत्मघात नहीं है। इसे नेक्रोसिस कहते हैं। इसमें कोशिकाएं स्वेच्छा से नहीं मरतीं, उनकी हत्या होती है। किन्तु एपोप्टोसिस आंतरिक या बाह्य कारणों से, शरीर के हित में स्वैच्छिक आत्म बलिदान है, मृत्यु का वरण है। शरीर के रोगों से और दर्द से बचाने का तरीका है।

नेक्रोसिस और एपोप्टोसिस में कोशिकाएं भिन्न प्रकार से नष्ट होती हैं। कोशिका मृत्यु के दोनों प्रकार नेक्रोसिस और एपोप्टोसिस की विधियों में भिन्नता आसानी से पहचानी जा सकती है।

नेक्रोसिस के प्रारंभ में प्रायः कोशिकाओं में सूजन आ जाती है और सूजन के सभी लक्षण परिलक्षित होते हैं। दर्द महसूस होता है। कोशिकाएं फूल जाती है और उनका ढांचा और उनकी अखंडता नष्ट हो जाती है। कोशिकांग फूल कर फूटने लगते हैं। यह सब अव्यवस्थित ढंग से होता है।

एपोप्टोसिस में कोशिकाएं फूलने के बजाए सूखने और सिकुड़ने लगती हैं, छोटी हो जाती हैं। कोशिका झिल्ली की बाहरी सतह पर बुलबुलों के समान रचनाएं (ब्लेब) बनने लगती हैं। कोशिका द्रव्य और केन्द्रक सिकुड़ने लगते हैं। क्रोमेटिन यानी डीएनए और प्रोटीन नष्ट होने लगते हैं और

अन्ततः कोशिका छोटे-छोटे पैकेट्स में टूट जाती हैं जिन्हें भक्षी कोशिकाएं (फेगोसाइट्स) अपने अंदर लेकर नष्ट कर देते हैं।

कोशिकाएं आत्मघात क्यों करती हैं? शरीर की वृद्धि के लिए जिस प्रकार कोशिका विभाजन आवश्यक है उसी प्रकार स्थान बनाने के लिए आत्मघात भी आवश्यक है। कुछ कोशिकाएं विशेष कार्य के लिए बनती हैं। कार्य की समाप्ति पर ये अनावश्यक और शरीर पर अवांछित बोझ हो जाती हैं। जैसे मेंढक की पूंछ, गलफड़े और लंबी आंत।

इसी प्रकार नए अंगों के निर्माण में भी आत्मघात महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए मानव भ्रूण में हाथ-पैर चप्पू जैसे होते हैं। उंगलियों के बीच में जाल होने के कारण उंगलियां पकड़ के लिए स्वतंत्र नहीं होती। अंगूठा भी उंगलियों से जुड़ा होता है और पकड़ने लायक नहीं होता। आत्मघात से ही कार्यशील उंगलियां निर्मित होती हैं। शरीर की वे कोशिकाएं जो संक्रमित हो जाती हैं उन्हें भी आत्मघात के द्वारा संक्रमण को बढ़ने से रोक कर पूरे शरीर को संक्रामक रोग से बचा लिया जाता है।

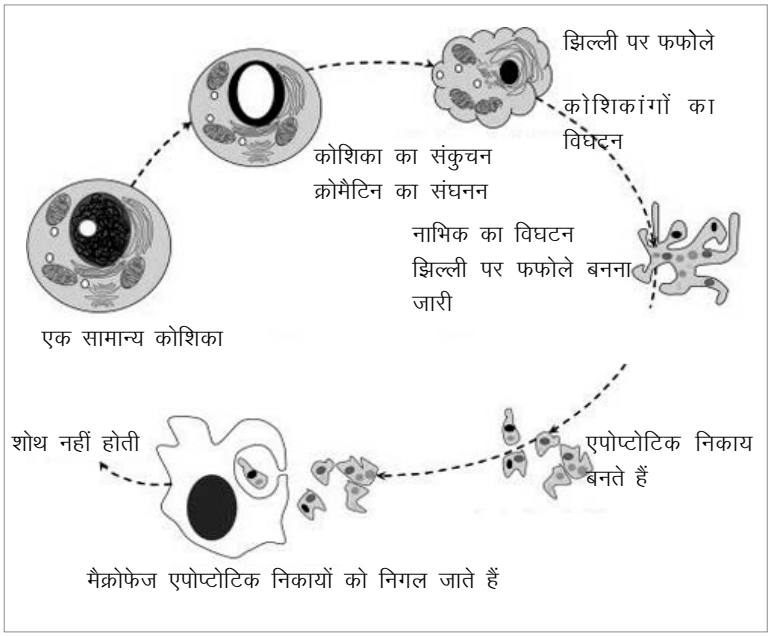

कैंसर का एपोप्टोसिस से गहरा नाता है। वायरस कैंसर कोशिकाओं को आत्मघात नहीं करने देता अन्यथा वायरसयुक्त कोशिकाएं आत्मघात करके शरीर को कैंसर जैसे घातक रोगों से बचा सकती हैं। अंग प्रत्यारोपण में आत्मघात की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि किसी प्रकार से प्रतिरक्षा कोशिकाएं आत्मघात से नष्ट हो जाएं तो प्रत्यारोपित अंगों को शरीर स्वीकार कर लेता है।

आत्मघात के अध्ययन में *सिनोरैब्डाइटिस एलेगेंस* नामक कृमि को मॉडल जीव के रूप में प्रयुक्त कर बहुत से रहस्यों पर से पर्दा उठाने में मदद मिली है।

सन 2002 में चिकित्सा/कार्यिकी का नोबेल पुरस्कार तीन वैज्ञानिकों को मिला था। इन्होंने भ्रूणीय विकास के दौरान अंगों के निर्माण तथा कोशिका आत्मघात में आनुवंशिक नियंत्रण की भूमिका को समझाने के लिए मौलिक खोज की थी। छोटी आयु, भरपूर प्रजनन क्षमता, पारदर्शी शरीर एवं आसानी से प्रयोगशाला में कल्चर हो जाने की सुविधाओं के कारण वैज्ञानिकों ने *सिनोरैब्डाइटिस एलेगेंस* कृमि का चुनाव किया। उन्होंने पाया कि कृमि के 1090 में से 131 कोशिकाएं नियत समय पर कोशिका आत्मघात से मर जाती है।

उन्होंने यह भी बताया कि भ्रूण से कृमि बनने की प्रक्रिया के दौरान कुछ कोशिकाएं कोशिका आत्मघात से गुजरती हैं क्योंकि उनका कार्य कृमि शरीर में खत्म हो चुका होता है। उन्होंने कोशिका आत्मघात की प्रक्रिया के लिए ज़िम्मेदार जीन भी खोज निकाला। आत्मघात के लिए ज़िम्मेदार जीन में म्यूटेशन होने से मरने की बजाय कोशिकाएं विभाजन करने लगती हैं। उन्होंने यह भी बताया कि ये जीन मानव में भी पाए जाते हैं।

जब टैडपोल या कैटरपिलर को क्रमशः मेंढक और तितली (यानी वयस्क) में बदलने का समय आ जाता है तो उनकी अनेक कोशिकाओं को आत्महत्या के लिए मजबूर होना पड़ता है। टैडपोल के परिवर्धन में थायरॉइड हार्मोन की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। थायरॉइड हार्मोन वहां पर जुड़ जाता है जहां कोशिका के केन्द्रक में थायरॉइड ग्राही हो। थायरॉइड हार्मोन के जुड़ते ही कोशिका आत्मघात करने वाले जीन को अभिव्यक्ति करने लगती है। इसके साथ ही आत्मघात के आंतरिक एवं बाहरी रास्ते भी खुल जाते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

मिर्गी के दौरे में जूता सुंघाना कहां तक सही?

कालू राम शर्मा

पिछले दिनों छत्तीसगढ़ में एक सामूहिक विवाह उत्सव के दौरान एक दूल्हे को मिर्गी का दौरा पड़ा। वहां मौजूद एक अधिकारी ने मरीज़ को जूता सुंघाने का सुझाव ही नहीं दिया बल्कि उसे अपना जूता निकालकर सुंघाने लगे। कुछ ही देर में मरीज़ होश में आ गया। यह तो होना ही था क्योंकि मिर्गी का दौरा चंद सेकंड या मिनट से अधिक का नहीं होता। मिर्गी के दौरे के बाद मरीज़ अपनी सामान्य स्थिति में आ जाता है।

बाद में जूता सुंघाने का विरोध किया गया। लेकिन वे अधिकारी अड़े रहे कि यह एक कारगर उपाय है। समाज में यह मान्यता व्याप्त है कि अगर किसी को मिर्गी का दौरा पड़े तो सबसे पहले उसे जूता सुंघाया जाए। और भी तरीके अपनाए जाते हैं। मसलन मरीज़ के मुंह को ज़बर्दस्ती खोलकर पानी पिलाना। दांतों के बीच चम्मच या चाबी वगैरह फंसा दी जाती है।

मिर्गी के दौरे में मरीज़ के मुंह से झाग निकलने लगता है और शरीर की मांसपेशियों में जकड़न व अकड़न आने लगती है। मरीज़ की आंखें बंद होने लगती है या फिर वह एकटक ताकता रहता है। मरीज़ का जबड़ा बंद हो जाता है। इस वजह से जीभ तक कट जाती है (दांतों के बीच चम्मच शायद इसी से बचाव के लिए रखा जाता है)। अक्सर मिर्गी के दौरे में निचला जबड़ा अकड़ जाता है और इसकी वजह से ऊपरी व निचले जबड़े के दांत चिपक जाते हैं। मिर्गी के दौरे के दौरान अंगों की अकड़न, मुंह से झाग आने जैसे लक्षण इसकी भयावहता को बढ़ाते हैं।

मिर्गी के मरीज़ को परिवार भी हीन नज़रों से देखने लगता है। मिर्गी के मरीज़ को संभालने की बजाय उससे दूर हटना समस्या को और बढ़ा देता है। मिर्गी के मरीज़ को जिस भावनात्मक सम्बल की ज़रूरत होती है वह न मिलने से वह तनाव में रहने लगता है। मिर्गी को लेकर अज्ञानता के चलते कहा जाता है कि उसे बाहरी हवा लग चुकी है जिसे भूत-प्रेत से जोड़ा जाता है।

मिर्गी को लेकर एक मान्यता है कि पानी के स्रोत जैसे कुएं, बावड़ी, नदी-तालाब को देखने से मिर्गी के दौरे पड़ने लगते हैं। दरअसल, पानी की मौजूदगी का मिर्गी से कोई ताल्लुक नहीं है। हां, यह ज़रूर ध्यान देने की बात है कि मिर्गी के मरीज़ को पानी के स्रोतों से दूर रखना चाहिए। इतना ही नहीं मिर्गी के मरीज़ को मशीनों से दूर रखना चाहिए व वाहन चलाने से रोकना चाहिए।

मिर्गी का मरीज़ मानसिक रोगी नहीं होता। वह पागल नहीं होता। वह आम लोगों की तरह ही होता है। उसकी शारीरिक प्रक्रियाएं सामान्य होती हैं। मिर्गी के दौरे के बाद मरीज़ सामान्य हो जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन का अनुमान है कि दुनिया भर में 5 करोड़ लोग मिर्गी रोग से ग्रसित हैं। मिर्गी दुनिया की सबसे व्यापक न्यूरालॉजिकल बीमारियों में से एक है। भारत में लगभग एक करोड़ मिर्गी के रोगी हैं। यह दुखद है कि मिर्गी से पीड़ित तीन-चौथाई लोगों को उचित इलाज नहीं मिल पाता।

मान्यता यह भी है कि मिर्गी एक संक्रामक रोग है और यह रोगी के संपर्क में आने से फैलता है। यह पूरी तरह से गलत है। यह पूरी तरह से आनुवंशिक भी नहीं है। लगभग एक प्रतिशत लोगों में ही यह आनुवंशिक होता है।

चरक संहिता में मिर्गी का उल्लेख है। चरक ने इसे शारीरिक बीमारियों जैसा ही माना है। औषधियों से इसके उपचार की बात कही है। हिप्पोक्रेटस ने कहा है कि मिर्गी दैवी बीमारी नहीं है। महाकवि माघ ने मिर्गी की तुलना समुद्र से की है। दोनों ज़मीन पर पड़े हैं, गरजते हैं, भुजाएं हिलाते हैं व झाग पैदा करते हैं। शेक्सपीयर के साहित्य में भी मिर्गी का विवरण मिलता है। ओथेलो के नायक को मिर्गी का दौरा पड़ता है व अन्य दो पात्र कैसियो व इयागो उसकी हंसी उड़ाते हैं। उल्लेख मिलता है कि हालैंड के जाने-माने

चित्रकार विन्सेन्ट वैन गॉग मिर्गी से पीड़ित थे।

मिर्गी का बुद्धि से कोई सम्बंध नहीं। दरअसल, मिर्गी एक तंत्रिका सम्बंधी विकार है। व्यक्ति को दौरे पड़ते हैं इससे दिमागी संतुलन बिगड़ जाता है। इसके आम लक्षण हैं बेहोशी आना, चक्कर आना, गिर पड़ना, हाथ-पैरों में झटके आना वगैरह।

हमारे पूरे शरीर में तंत्रिकाओं का जाल बिछा हुआ है जो अंततः मस्तिष्क से जुड़ा होता है। व्यक्ति का मस्तिष्क विद्युत संकेतों पर निर्भर करता है जो तंत्रिकाएं उसे भेजती रहती हैं। हमें अपने अंगों या चमड़ी से जो भी संवेदनाएं महसूस होती हैं वे तंत्रिकाओं के जरिए मस्तिष्क तक पहुंचती हैं। तंत्रिकाओं के द्वारा जो संकेत मस्तिष्क तक पहुंचते हैं व मस्तिष्क से अंगों तक पहुंचते हैं वे तंत्रिका तंत्र की सबसे छोटी इकाई न्यूरॉन में विद्युत-रासायनिक क्रिया का परिणाम होते हैं। अगर आप अपने हाथ को हिलाते हैं तो मस्तिष्क से हाथ को संकेत तंत्रिकाओं के ज़रिए ही भेजा जाता है। हर काम का संदेश मस्तिष्क तंत्रिकाओं के ज़रिए उस अंग तक भेजता है।

दुर्भाग्य से मस्तिष्क इस कार्य को कुछ लोगों में ठीक से नहीं कर पाता। मिर्गी के मरीज़ में यही होता है, खास तौर से जब मिर्गी का दौरा आया हो। दरअसल, मस्तिष्क में फीडबैक व्यवस्था होती है। अगर मस्तिष्क किसी अंग को सक्रिय रहने का निर्देश देता है तो उसे रोकने की भी व्यवस्था होती है। अगर इस व्यवस्था में गड़बड़ी हो तो उसे मस्तिष्क नियंत्रित नहीं कर पाता है। मिर्गी के लिए मस्तिष्क की यही गड़बड़ी ज़िम्मेदार होती है।

तंत्रिका कोशिकाएं या न्यूरान्स विद्युत-रासायनिक संकेत पैदा करते हैं जो विचारों, भावनाओं और तमाम कामों को करने के लिए प्रेरित करते हैं। मिर्गी आने का अर्थ है कि एक ही वक्त में कई न्यूरॉन्स एक ही समय में संकेत देने लगते हैं - एक सेकंड में लगभग 500 संकेत जो सामान्य से कई गुना अधिक हैं। न्यूरॉन्स के ये अत्यधिक संकेत अनैच्छिक क्रियाओं, संवेदनाओं और भावनाओं की वजह बनते हैं। न्यूरॉन्स की अस्थाई गड़बड़ी से उस व्यक्ति की शारीरिक संवेदना को नुकसान होता है। व्यक्ति को दौरे पड़ने लगते हैं। दौरे की अवधि कुछ सेकंड से लेकर दो-तीन मिनट तक हो सकती है।

मिर्गी के दौरे में मासंपेशियों में संकुचन होने लगता है और मरीज़ चेतना खो देता है। कुछ में चेतना नहीं जाती और वे कुछ पल के लिए ताकते रहते हैं। मिर्गी से ग्रसित कुछ व्यक्ति दिन में कई बार इसकी जकड़ में आते हैं।

मिर्गी में मस्तिष्क के हिस्सों को असामान्य रूप से अधिक विद्युत संकेत मिलते हैं जो उसके सामान्य कामकाज को बाधित करता है। तंत्रिका कोशिकाओं के बीच विद्युतीय संकेतों में यह उछाल क्यों आता है, इसे समझने की कोशिश की जा रही है। नेवाडा विश्वविद्यालय, लॉस वेगास के शोधकर्ता रोशेल हाइन्स के नेतृत्व में तंत्रिका विज्ञानियों ने यह पता लगाया है कि मस्तिष्क के प्रोटीन्स के बीच परस्पर किस प्रकार की अंतर्क्रिया होती है।

हाइन्स की टीम ने केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को बाधित करने में शामिल दो प्रोटीनों का पता लगाया है। नए शोध से पता चलता है कि वे दो प्रोटीन मिर्गी के लिए ज़िम्मेदार हैं। मस्तिष्क हमारी मांसपेशियों को तंत्रिकाओं के ज़रिए संकेत देता है और वे उत्तेजित होती हैं। इसी दौरान मस्तिष्क न्यूरॉन्स को यह संकेत भी देता है कि मांसपेशियों की उत्तेजना को रोक सके। इस उत्तेजना व बाधित करने के बीच सामान्य मनुष्य में संतुलन बना रहता है।

रोशेल हाइन्स व उनकी टीम ने पाया कि मस्तिष्क की गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए इन दोनों प्रोटीन के बीच संवाद ज़रूरी है। अगर यह संवाद न हो तो मिर्गी के झटके आने लगते हैं। शोध का ज़ोर इस बात पर था कि इस प्रोटीन-द्वय प्रणाली को बाधित करने के तरीके का पता लगाया जाए। इसके पहले के अनुसंधान में पूरे मस्तिष्क को नियंत्रित करने पर ज़ोर दिया जाता था। इसके कई दुष्प्रभाव होते हैं। इस शोध को आधार बनाकर अब वैज्ञानिक इन दो प्रोटीनों के बीच संवाद पर काम कर सकते हैं। अभी तक इस तरह की दवा नहीं बनाई जा सकी है। संभावना हैं कि इस दिशा में आगे और काम होगा व ऐसी दवाएं बनाई जा सकेगी जिनसे दुष्प्रभावों को कम किया जा सकेगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

जीभ के बैक्टीरिया - अपना पास-पड़ोस खुद चुनते हैं

सूक्ष्मजीव हमारे शरीर पर हर जगह, जैसे हमारे मुंह, हमारी आंत में रहते हैं। इसी तरह हमारी जीभ पर भी लाखों सूक्ष्मजीव रहते हैं। और अब *सेल बायोलॉजी* में प्रकाशित एक हालिया अध्ययन बताता है कि हमारी जीभ पर रहने वाले ये सूक्ष्मजीव यूं ही बेतरतीब नहीं बसते हैं बल्कि वे अपनी तरह के सूक्ष्मजीवों के आसपास रहना पसंद करते है और अपनी प्रजाति के आधार पर बंटकर अलग-अलग समूहों में रहते हैं।

जीभ पर इन सूक्ष्मजीवों की बसाहट कैसी है, यह जानने के लिए मरीन बायोलॉजिकल लैबोरेटरी की सूक्ष्मजीव विज्ञानी जेसिका मार्क वेल्च और उनके साथियों ने पहले 21 स्वस्थ लोगों की जीभ को खुरचकर साफ किया। इसके बाद उन्होंने बैक्टीरिया के विशिष्ट समूहों की पहचान करने के लिए उन पर अलग-अलग रंग के फ्लोरोसेंट टैग लगाए, ताकि यह देख सकें कि ये बैक्टीरिया जीभ पर ठीक-ठीक कहां रहते हैं। उन्होंने पाया कि सभी बैक्टीरिया अपनी प्रजाति के एक मजबूत और सुगठित समूह में रहते हैं।

माइक्रोस्कोप से इन सूक्ष्मजीवों को देखने पर इनका झुंड एक सूक्ष्मजीवीय इंद्रधनुष जैसा दिखता है। माइक्रोस्कोपिक तस्वीर में देखने पर पाया गया कि *एक्टिनोमाइसेस* बैक्टीरिया जीभ के उपकला (या एपिथिलीयल) ऊतक के करीब पनपते हैं। *रोथिया* बैक्टीरिया अन्य समुदायों के बीच बड़ा समूह बना कर रहते हैं। *स्ट्रेप्टोकोकस* प्रजाति के बैक्टीरिया जीभ के किनारे-किनारे एक पतली लकीर बनाते हुए और महीन नसों के आसपास रहते हैं। इन तस्वीरों को देखकर अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि ये कॉलोनियां कैसे बसी और फली-फूली होंगी।

हालांकि डीएनए अनुक्रमण के ज़रिए वैज्ञानिक इस बारे में तो जानते थे कि हमारे शरीर में कौन से बैक्टीरिया रहते हैं लेकिन पहली बार जीभ पर रहने वाले सूक्ष्मजीवों के समुदाय का इतने विस्तार से अध्ययन किया गया है। शोधकर्ताओं का कहना है कि सूक्ष्मजीवों की विभिन्न प्रजातियां कहां जमा होती हैं और वे स्वयं को कैसे व्यवस्थित करती हैं, इस बारे में पता लगाकर बैक्टीरिया की कार्यप्रणाली के बारे में पता लगाया जा सकता है और देखा जा सकता है कि वे एक-दूसरे से कैसे संपर्क बनाते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

पृथ्वी के नीचे मिला नया सूक्ष्मजीव संसार

नेचर पत्रिका में प्रकाशित शोध के अनुसार हाल ही में शोधकर्ताओं को हिंद महासागर के नीचे, पृथ्वी की भू-पर्पटी की सबसे निचली परतों में सूक्ष्मजीवों का एक नया संसार मिला है।

वुड्स होल ओशिएनोग्राफी इंस्टिट्यूट की समुद्री सूक्ष्मजीव विज्ञानी वर्जीनिया एजकॉम्ब और उनके दल को समुद्र के नीचे मौजूद पर्वत - अटलांटिस बैंक - की चट्टानों पर बैक्टीरिया, कवक और आर्किया की कई प्रजातियां मिलीं हैं। ये सूक्ष्मजीव पृथ्वी की सतह के नीचे सूक्ष्म दरारों और अल्प-पोषण की परिस्थितियों के लिए अनुकूलित हैं। इन गहराइयों में ये अपना भोजन ऐसे अमीनो एसिड और अन्य कार्बनिक रसायनों से प्राप्त करते हैं जो समुद्री धाराओं के साथ इतनी गहराई में पहुंच जाते हैं।

वैसे काफी पहले तक इन कठिन परिस्थितियों में जीवित रहने वाले सूक्ष्मजीवों को जीवन का 'इन्तहा' रूप माना जाता था, लेकिन पिछले कुछ दशकों का अनुसंधान बताता है कि पृथ्वी पर मौजूद सूक्ष्मजीवों में से लगभग 70 प्रतिशत इसी तरह की कठिन परिस्थितियों में जीवित रहते हैं। कई अन्य अध्ययन बताते हैं कि ऐसे स्थान, जो लंबे समय तक जीवन के अनुकूल नहीं माने जाते थे, उन स्थानों पर भी प्रचुर मात्रा में जीवन मौजूद है। जैसे महासागरों के नीचे गहरी तलछट में, अंटार्कटिका के ठंडे रेगिस्तान में और ऊपरी वायुमंडल के समताप मंडल में भी।

इन स्थानों पर पाए जाने वाले सूक्ष्मजीव विषम परिस्थितियों

की चुनौतियों से निपटने के लिए विभिन्न तरह से विकसित हुए हैं। जैसे कुछ सूक्ष्मजीव धातुओं से सांस ले सकते हैं (यहां तक कि युरेनियम जैसी रेडियोधर्मी धातुओं से भी), कुछ सूक्ष्मजीव हवा में अत्यल्प गैसों से पोषण लेते हैं और दलदली गहरे समुद्र तल में दबे कुछ सूक्ष्मजीव तो इतनी धीमी गति से जीवनयापन करते हैं कि वे सैकड़ों-हज़ारों साल तक जीवित रह पाते हैं; इस दौरान वे बहुत कम खाते हैं और कम प्रजनन करते हैं।

चूंकि इन सूक्ष्मजीवों को प्रयोगशाला में कल्चर कर पाना संभव नहीं था इसलिए इनमें से अधिकांश सूक्ष्मजीवों का अध्ययन नहीं किया जा सकता था। इसके अलावा कई सूक्ष्मजीव कृत्रिम परिस्थितियों में प्राकृतिक परिस्थितियों से भिन्न व्यवहार करते हैं इसलिए उनके जीवन सम्बंधी रणनीतियों का अध्ययन करना मुश्किल रहा है। लेकिन मेटाजीनोमिक तकनीक से सूक्ष्मजीवों की जीन-अभिव्यक्ति को ट्रैक करने में मदद मिली है।

इन तकनीक की मदद से प्रोटीन, डीएनए की मरम्मत के लिए कम-ऊर्जा तकनीकों और ऊर्जा-कुशल चयापचय रणनीति के लिए ज़िम्मेदार जीन्स की पहचान की गई है। इसके अलावा इनकी मदद से उन जीन्स का पता भी लगाया गया है जो बैक्टीरिया को कार्बन मोनोऑक्साइड और हाइड्रोजन जैसी अत्यल्प गैसों पर जीवित रहने के लिए तैयार करते हैं।

ओरेगन स्टेट युनिवर्सिटी के माइक्रोबियल इकोलॉजिस्ट रिक कोलवेल बताते हैं कि इस अध्ययन के नतीजे इस बारे में हमारी समझ को बढ़ाते हैं कि चट्टानों की दरारों में सूक्ष्मजीव कैसे जीवित रहते हैं। इस दिशा में हमें और प्रमाण मिल रहे हैं कि ये सूक्ष्मजीव जिन चीजों पर निर्वाह करते हैं (जैसे ऊर्जा के स्रोत के रूप में हाइड्रोजन), वे जीवन को एक अलग ही आयाम प्रदान करते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

हवा में से बिजली पैदा करते बैक्टीरिया

एक ताज़ा अध्ययन में पता चला है कि कुछ बैक्टीरिया ऐसे नैनो (अति-सूक्ष्म) तार बनाते हैं जिनमें से होकर बिजली बहती है, हालांकि अभी शोधकर्ता यह नहीं जानते कि इस बिजली का स्रोत क्या है। वैसे एक बात पक्की है कि ये बैक्टीरिया और उनके द्वारा बनाए गए नैनो तार बिजली का उत्पादन तब तक ही करते हैं, जब तक कि हवा में नमी हो। दरअसल ये नैनो तार और कुछ नहीं, प्रोटीन के तंतु हैं जो इलेक्ट्रॉन्स को बैक्टीरिया से दूर ले जाते हैं। इलेक्ट्रॉन का प्रवाह ही तो बिजली है।

यह देखा गया है कि जब पानी की सूक्ष्म बूंदें ग्रेफीन या कुछ अन्य पदार्थों के साथ अंतर्क्रिया करती हैं तो विद्युत आवेश पैदा होता है और इन पदार्थों में से इलेक्ट्रॉन का प्रवाह होने लगता है। लगभग 15 वर्ष पूर्व मैसाचुसेट्स विश्वविद्यालय के सूक्ष्मजीव वैज्ञानिक डेरेक लवली ने खोज की थी कि *जियोबैक्टर* नामक बैक्टीरिया इलेक्ट्रॉन्स को कार्बनिक पदार्थों से धात्विक यौगिकों (जैसे लौह ऑक्साइड) की ओर ले जाता है। उसके बाद यह पता चला कि कई अन्य बैक्टीरिया हैं जो ऐसे प्रोटीन नैनो तार बनाते हैं जिनके ज़रिए वे इलेक्ट्रॉन्स को अन्य बैक्टीरिया या अपने परिवेश में उपस्थित तलछट तक पहुंचाते हैं। इस प्रक्रिया के दौरान बिजली पैदा होती है।

फिर लगभग 2 वर्ष पहले एक शोधकर्ता ने पाया कि इन नैनो तारों को बैक्टीरिया से अलग कर दिया जाए, तो भी इनमें विद्युत धारा पैदा होती रहती है। देखा गया कि जब नैनो तारों से बनी एक झिल्ली को सोने की दो चकतियों के बीच सैंडविच कर दिया जाता है, तो इस व्यवस्था में से 20 घंटे तक बिजली मिलती रहती है। इस व्यवस्था में जुगाड़ यह करना पड़ता है कि ऊपर वाली तश्तरी थोड़ी छोटी हो ताकि नैनो तार की झिल्ली नम हवा के संपर्क में रहे।

शोधकर्ताओं को इतना तो समझ में आ गया कि इलेक्ट्रॉन का स्रोत सोने की चकती नहीं है क्योंकि कार्बन चकतियों ने भी यही असर पैदा किया, जबकि कार्बन आसानी इलेक्ट्रॉन से नहीं छोड़ता। दूसरी संभावना यह हो सकती थी कि नैनो तार विघटित हो रहे हैं लेकिन पता चला कि वह भी नहीं हो

रहा है। तीसरा विचार था कि हो न हो, यह प्रकाश विद्युत प्रभाव के कारण काम कर रहा है लेकिन यह विचार भी निरस्त करना पड़ा क्योंकि बिजली तो अंधेरे में भी बहती रही। अंततः लगता है कि शायद नमी ही बिजली का स्रोत है। *नेचर* में प्रकाशित शोध पत्र में शोधकर्ताओं ने कयास लगाया है कि संभवतः पानी के विघटन के कारण बिजली बन रही है।

अब शोधकर्ताओं ने *जियोबैक्टर* के स्थान पर आसानी से मिलने व वृद्धि करने वाले बैक्टीरिया *ई. कोली* की मदद से यह जुगाड़ जमाने में सफलता प्राप्त कर ली है। यह इतनी बिजली देता है कि मोबाइल फोन जैसे उपकरणों का काम चल सकता है। ***(स्रोत फीचर्स)***

मधुमक्खियां साथियों का अंतिम संस्कार करती हैं

मनुष्यों में मृतकों के अंतिम संस्कार की प्रथाओं से तो हम अच्छी तरह से परिचित हैं लेकिन एक ताज़ा अध्ययन से पता चला है कि श्रमिक मधुमक्खियों में एक ऐसा वर्ग होता है जो अपने मृत साथियों का अंतिम संस्कार करता है। दिलचस्प बात है कि ये अपने मृत साथियों को अंधेरे में भी ढूंढ लेते हैं - 30 मिनट से ही कम समय में।

इसको समझने के लिए चाइनीज़ एकेडमी ऑफ साइंस के ज़ीशुआंग बन्ना ट्रॉपिकल बॉटेनिकल गार्डन के वेन पिंग ने सोचा कि शायद एक विशिष्ट गंध-अणु होता होगा जो शहीद मधुमक्खियों को खोजने में मदद करता होगा। दरअसल चींटियां, मधुमक्खियां और अन्य कीट क्यूटीक्यूलर हाइड्रोकार्बन (सीएचसी) नामक यौगिकों से ढंके होते हैं। यह मोमी परत इन जीवों की त्वचा को सूखने से बचाती है। जीवित कीट में ये पदार्थ हवा में लगातार छोड़े जाते हैं। इन्हीं की मदद से छत्ते के सदस्यों की पहचान की जाती है।

वेन ने अनुमान लगाया कि मरने के बाद जब उनके शरीर का तापमान कम हो जाता है, तब मधुमक्खियां हवा में काफी कम मात्रा में फेरोमोन छोड़ती होंगी। जब रासायनिक तरीकों से परीक्षण किया गया तो पता चला कि मृत, कम तापमान वाली मधुमक्खियां अपने जीवित साथियों की तुलना में कम सीएचसी का उत्सर्जन करती हैं।

अब अगला प्रयोग यह जानना था कि क्या गंध में परिवर्तन को जीवित मधुमक्खियां जान पाती हैं। इसके लिए वेन ने एशियाई मधुमक्खी (*Apis cerana*) के पांच छत्तों का अध्ययन किया। वेन ने पाया कि जब सामान्य मृत ठंडी पड़ चुकी मधुमक्खियों को रखा गया तब श्रमिक मधुमक्खियों

ने 30 मिनट से भी कम समय में उन्हें वहां से हटा दिया। लेकिन जब उन्होंने मृत मधुमक्खियों के शरीर को गर्म करना शुरू किया तब श्रमिक मधुमक्खियों को अपने मृत साथियों को ढूंढने में घंटो लग गए। *बायोआर्काइव्स* में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार ऐसा शायद इसलिए हुआ क्योंकि एक मृत गर्म मक्खी, एक जीवित मक्खी के लगभग बराबर सीएचसी का उत्सर्जन करती है।

अपने इस अध्ययन को और पक्का करने के लिए वेन ने मृत मधुमक्खियों का सीएचसी हेक्सेन से साफ कर दिया जिससे उनकी त्वचा पर मौजूद तेल और मोम को हटाया जा सके। इसके बाद उन्होंने इन मक्खियों को उनके जीवित साथियों के तापमान तक गर्म किया और उन्हें वापस छत्ते में रख दिया। उन्होंने पाया कि अंतिम संस्कार करने वाली श्रमिक मधुमक्खियों ने आधे घंटे के अंदर इस तरह साफ किए गए अपने 90 प्रतिशत मृत साथियों को वहां से हटा दिया। इससे मालूम चलता है कि न केवल तापमान बल्कि सीएचसी की अनुपस्थिति भी मृतक की पहचान में उपयोगी होती है। ***(स्रोत फीचर्स)***

हिमालय क्षेत्र के हाईवे निर्माण में सावधानी ज़रूरी

भारत डोगरा

हाल के समय में हिमालय क्षेत्र में हाईवे निर्माण व हाईवे को चौड़ा करने में हज़ारों करोड़ रुपए का निवेश हुआ है, पर क्रियान्वयन में कमियों, उचित नियोजन के अभाव व आसपास के गांववासियों से पर्याप्त विमर्श न करने के कारण खुशहाली के स्थान पर गंभीर समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं। अतः बहुत ज़रूरी है कि इन गलतियों को सुधारने के लिए असरदार कार्रवाई की जाए ताकि विकास-मार्गों को विनाश मार्ग बनने से रोका जा सके।

इस संदर्भ में दो सबसे चर्चित परियोजनाएं हैं उत्तराखंड की चार धाम परियोजना व हिमाचल प्रदेश की परवानू-सोलन हाईवे परियोजना। दोनों परियोजनाओं को मिला कर देखा जाए तो हाल के समय में हिमालय के पर्यावरणीय दृष्टि से अति संवेदनशील क्षेत्र में लगभग 50,000 पेड़ कट चुके हैं। एक बड़ा पेड़ कटता है तो उससे आसपास के छोटे पेड़ों को भी क्षति पहुंचती है।

इन दोनों परियोजनाओं के कारण अनेक नए भूस्खलन क्षेत्र उभरे हैं व पुराने भूस्खलन क्षेत्र अधिक सक्रिय हो गए हैं। इस कारण यात्रियों को अधिक खतरे व परेशानियां झेलनी पड़ रही हैं जबकि गांववासियों के लिए अधिक स्थायी संकट उत्पन्न हो गया है। कुछ गांवों व बस्तियों का तो अस्तित्व ही संकट में पड़ गया है। परवानू-सोलन हाईवे के किनारे बसे गांव मंगोती नंदे का थाड़ा गांव के लोगों ने बताया कि हाईवे के कार्य में पहाड़ों को जिस तरह अस्त-व्यस्त किया है उससे उनका गांव ही संकटग्रस्त हो गया है। सरकार को चाहिए कि उन्हें कहीं और सुरक्षित व अनुकूल स्थान पर बसा दे।

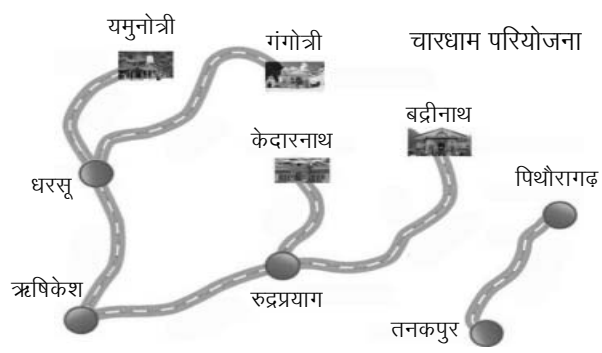

इसी हाईवे पर सनवारा, हार्डिग कालोनी व कुमारहट्टी के पास के कुछ स्थानों की स्थिति भी चिंताजनक हुई है। कुछ किसानों ने बताया कि हाईवे चौड़ा करने के पहले उनसे जो भूमि ली गई उसका तो मुआवज़ा तो मिल गया था पर हाईवे कार्य के दौरान जो भयंकर क्षति हुई उसका मुआवज़ा नहीं के बराबर मिला। अनेक छोटे दुकानदारों को हटा दिया गया है।

इसी तरह चार धाम परियोजना में भी अनेक किसानों व दुकानदारों की बहुत क्षति हुई है व कई अन्य इससे आशंकित हैं। इस परियोजना से जुड़ा सबसे बड़ा संकट तो यह है कि इससे किसी बड़ी आपदा की संभावना बढ़ रही है। इस परियोजना के क्रियान्वयन के दौरान बहुत बड़ी मात्रा में मलबा नदियों में डाला गया है व इस कारण किसी भीषण बाढ़ की संभावना बढ़ गई है।

इन दोनों परियोजनाओं में अनेक सावधानियों की उपेक्षा की गई है। कमज़ोर संरचना के संवेदनशील पर्वतों में भारी मशीनों से बहुत अनावश्यक छेड़छाड़ की गई। स्थानीय लोग बताते हैं कि पहाड़ों को ध्वस्त किए बिना ट्रैफिक को सुधारना संभव था, पर इस बात को अनसुनी करके पहाड़ों को भारी मशीनों से गलत ढंग से काटा गया। स्थानीय लोगों से विमर्श नहीं हुआ। भू-वैज्ञानिकों व पर्यावरणविदों की सलाह की उपेक्षा हुई। सड़क को ज़रूरत से अधिक चौड़ी करने की ज़िद से भी काफी क्षति हुई जिससे बचा जा सकता था। लोगों की आजीविका, खेतों, वृक्षों की किसी भी क्षति को न्यूनतम रखना है, इस दृष्टि से योजना बनाई ही नहीं गई थी। मज़दूरों की भलाई व सुरक्षा पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। योजनाएं तैयार करने में पर्यटन, तीर्थ व सुरक्षा की दुहाई दी गई, पर भूस्खलनों व खतरों की संभावना बढ़ने से इन तीनों उद्देश्यों की भी क्षति ही हुई है।

अतः समय आ गया है कि अब तक हुई गंभीर गलतियों को हर स्तर पर सुधारने के प्रयास शीघ्र से शीघ्र किए जाएं व हिमालय की अन्य सभी हाईवे परियोजनाओं में भी इन सावधानियों को ध्यान में रखा जाए। ***(स्रोत फीचर्स)***

प्राचीन एम्बर में सुरक्षित मिला तिलचट्टा

एम्बर (जीवाश्मित रेज़िन) में तिलचट्टों का मल सुरक्षित मिलना तो काफी आम है। लेकिन उत्तरी म्यांमार की हुकॉन्ग घाटी से बरामद किए गए करीब 1 करोड़ वर्ष पुराने एम्बर नमूनों में तिलचट्टा (कॉकरोच) और उसका मल दोनों साथ मिले हैं। एम्बर में किसी जीव का मल और सम्बंधित जीव दोनों का साथ मिलना काफी दुर्लभ है।

नेचरविसेनशाफ्टेन (प्रकृति विज्ञान) में प्रकाशित अध्ययन में शोधकर्ताओं ने मल का बहुत बारीकी से अवलोकन किया है। उन्हें कॉकरोच की विष्ठा में संरक्षित परागकण दिखे, जिससे पता चलता है कि साइकस वृक्षों के परागण में तिलचट्टों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। (साइकस वृक्षों से ऐसा रस निकलता है जिसमें यह बदकिस्मत कॉचरोच फंस गया।) विष्ठा में शोधकर्ताओं को प्रोटोज़ोआ और बैक्टीरिया भी मिले हैं जो आजकल की दीमक और कॉकरोच की आंतों में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीवों से मिलते-जुलते हैं, जिससे लगता है कि कीट और उनकी आंत के सूक्ष्मजीवों का साथ लगभग एक करोड़ वर्ष पहले से है।

वैज्ञानिकों को उम्मीद है कि यह अध्ययन अन्य वैज्ञानिकों को रेज़िन में फंसे जीवों की ही नहीं बल्कि उनकी विष्ठा की भी बारीकी से पड़ताल करने को प्रोत्साहित करेगा। *(स्रोत फीचर्स)*

एम्बर में सुरक्षित मिला डायनासौर का सिर

लगभग दस करोड़ वर्ष पुराने एम्बर में अब तक पाए गए सबसे छोटे डायनासौर का सिर सुरक्षित मिला है। रेज़िन में फंसा यह सिर (चोंच सहित)

लगभग 14 मिलीमीटर का है। इससे लगता है कि यह डायनासौर बी-हमिंगबर्ड जितना बड़ा रहा होगा। यह सिर जिस डायनासौर समूह का है, माना जाता है कि उससे आधुनिक पक्षियों का विकास हुआ है।

म्यांमार से प्राप्त इस जीवाश्म को ओकुलुडेंटेविस खौंगरेई यानी आई-टूथ बर्ड का नाम दिया गया है। आधुनिक छिपकली की तरह, इसके सिर के दोनों ओर बड़ी-बड़ी आंखें हैं। और इसकी आंखों का छिद्र छोटा है जो आंखों में प्रवेश करने वाली रोशनी को सीमित करता है। इससे लगता है कि यह जानवर दिन में सक्रिय रहता था।

आदिम पक्षियों की तरह ओकुलुडेंटेविस के ऊपरी और निचले जबड़े में नुकीले दांत थे, जिससे लगता है कि यह एक शिकारी जीव था जो कीटों और छोटे अकशेरुकी जीवों का शिकार करता था। नेचर पत्रिका में प्रकाशित शोध में शोधकर्ताओं को लगता है कि डायनासौर की यह प्रजाति द्वीपीय बौनेपन का एक उदाहरण है, जो टापुओं की उस अर्ध वलय पर रहते थे जहां वर्तमान म्यांमार स्थित है।

शोधकर्ताओं का कहना है कि शरीर के बाकी हिस्सों के बिना पक्के तौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि ओकुलुडेंटेविस अन्य डायनासौर

से कितना करीबी था, या वह उड़ सकता था या नहीं। लेकिन उन्हें लगता है कि यह शायद आर्कियोप्टेरिक्स और जेहोलॉर्निस प्रजाति के पक्षियों

के समान है जो लगभग 15 से 12 करोड़ वर्ष पूर्व अस्तित्व में थे। *(स्रोत फीचर्स)*

स्रोत विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स
RNI REG. NO: MPHIN/2007/20200

विशाल सौर घड़ियां

सूरज, चांद, तारे हमेशा से कौतूहल का विषय रहे हैं। हर सभ्यता में लोगों ने इनका अवलोकन करके पैटर्न बनाने की कोशिश की है। सदियों से लोग परछाइयां दे खकर समय का अनुमान लगाने की कोशिश करते रहे हैं क्योंकि परछाई से अंदाज़ लगाया जा सकता है कि आकाश में सूरज कहां है। एक छड़ी की मदद से हम सूरज की गति का अच्छा अंदाज़ लगा सकते हैं। यूनान में एरेटोस्थेनीज नामक वैज्ञानिक ने तो एक छड़ी की मदद से घर बैठे पृथ्वी को नाप लिया था। तो छड़ी के कुछ प्रयोग आप भी करें। अगले कुछ अंकों में हम आकाश की टोह लेने के ऐसे कुछ आसान प्रयोग सुझाएंगे, जिन्हें करके मज़ा भी आएगा और शायद समझ भी बढे।

आम तौर पर हम मानकर चलते हैं कि सूरज रोज़ाना पूर्व में उगता है और पश्चिम में अस्त होता है। लेकिन क्या आपने कभी यह जानने की कोशिश की है क्या वास्तव में ऐसा होता है। यदि न की हो तो करके देखिए; आपकी आंखें खुल जाएंगी।

घर के आसपास एक ऐसा स्थान ढूंढिए जहां से सूर्य उगता हुआ दिखाई दे जाए। आजकल सूर्य को उगते देखने के लिए काफी पापड़ बेलने पड़ते हैं। हो सकता है कि सूर्योदय का अवलोकन करने के लिए आपको किसी मकान की छत पर चढ़ना पड़े या खुले मैदान में जाना पड़े।

अब पेड़, खंभे या अन्य किसी स्थिर वस्तु को निशान बना लीजिए। रोज़ाना या एक दिन छोड़कर या हर रविवार इसी वस्तु को सीध मानकर दस-पंद्रह दिन लगातार सूर्य के उगने के स्थान को देखिए। चुने हुए निशान और सूर्य के उगने के स्थान का खाका रोज अपनी कॉपी में बनाइए।

क्या सूर्य के उगने का स्थान बदला?

हो सकता है जिन दिनों आपने अवलोकन किए हों, उन दिनों सूर्योदय का स्थान प्रतिदिन थोड़ा दक्षिण में सरक रहा हो या हो सकता है कि उत्तर में सरक रहा हो।

जब सूर्य आकाश में दक्षिण की ओर जाता दिखता है, तो उसे दक्षिणायन कहते हैं, और जब वह आकाश में उत्तर की ओर जाता दिखता है, तो उसे उत्तरायण कहते हैं।

आपके अवलोकनों के दौरान सूर्य दक्षिणायन था या उत्तरायण?

अगली बार देखेंगे कि सूर्य उत्तरायण और दक्षिणायन क्यों होता है।

प्रकाशक, मुद्रक अरविन्द सरदाना की ओर से निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन द्वारा एकलव्य, जमनालाल बजाज परीसर, फॉर्च्यून कस्तुरी के पास, जाटखेडी रोड, जाटखेडी, भोपाल, म. प्र. पिन - 462 026 से प्रकाशन तथा
आदर्श प्राइवेट लिमिटेड, इंदिरा प्रेस कॉम्पलेक्स, एम.पी. नगर, ज़ोन-1 भोपाल (म.प्र.) 462011 से मुद्रित। सम्पादक: डॉ. सुशील जोशी